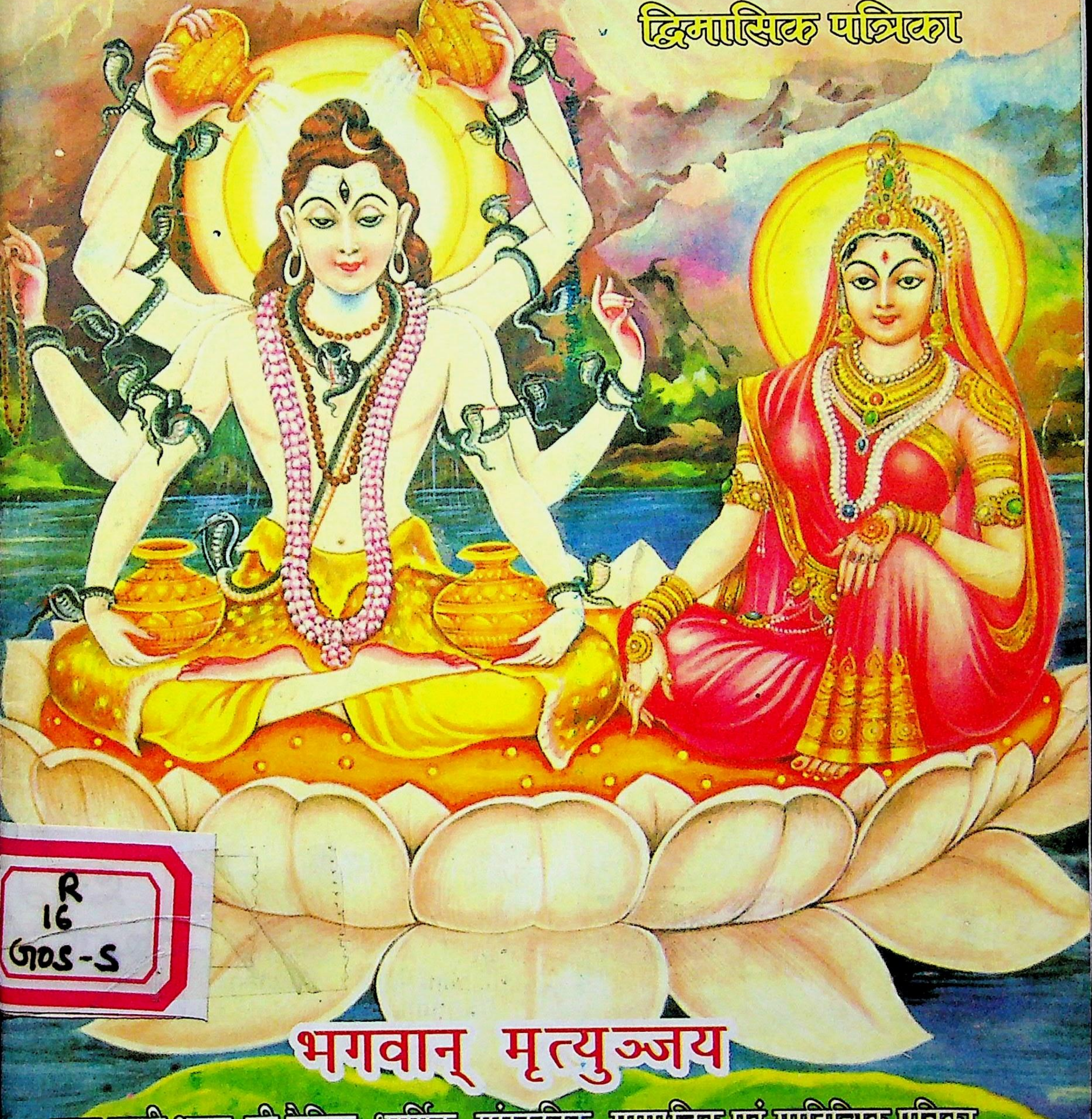
मूल्यः 20 रुपए

श्री गंगा संग्रह

वर्षः 2 अंकः 4 जुलाई–अगस्त, 2010

द्विमासिक पत्रिका



भगवान् मृत्युञ्जय

जम्मू यात्री भवन की नैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं साहित्यिक पत्रिका

भारतीय संस्कृति का विदेशों में भी यायावर के रूप में गुणानुवाद करने वाले विश्वविख्यात जम्मू-कश्मीर के स्वनामधन्य सांसद डॉ. कर्णसिंह जी शरत्कालीन नवरात्र दुर्गानवमी 2003 के बाद हरद्वार/हरिद्वार स्थित जम्मू यात्री भवन में भगवान् शंकर एवं श्री गंगा मैय्या की शुभाशीष प्राप्त करने हेतु 31 मई 2010, ज्येष्ठ कृष्ण तृतीया सोमवार के दिन पुनः अपने संस्मरणीय शुभागमन के अवसर पर विभिन्न धार्मिक नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं में जम्मू यात्री भवन ट्रस्ट के न्यासियों, कार्यकारिणी सदस्यों एवं सेवा कर्मचारियों के साथ व्यस्त दिखाई देते हुए


मुख्यद्वार पर अभिवादन स्वीकारते डॉ. कर्णसिंह जी


[illegible] शास्त्री डॉ. कर्णसिंह जी का स्वागत करते हुए


श्री राम लंगर महाराजा साहिब का स्वागत करते हुए


सांसद, महाराजा डॉ. कर्णसिंह जी के स्वागत की प्रतीक्षा में खड़े सेवाकर्मचारी


न्यासी एवं [illegible] डॉ. कर्णसिंह जी को परिसर से [illegible] की ओर ले जाते हुए


न्यासी एवं [illegible] डॉ. कर्णसिंह जी को परिसर से पंचमन्दिर की ओर ले जाते हुए


स्वागत काऊंटर लॉबी में न्यासियों के साथ महाराजा डॉ. कर्णसिंह जी


स्वागत काऊंटर लॉबी में [illegible] स्व. [illegible] लंगर की फोटो देखकर उनके सुपुत्र [illegible] राम लंगर जी आशीर्वचन कहते हुए।


लॉबी में न्यासियों के हाथों जलपान करते डॉ. कर्णसिंह जी।


ब्रह्मस्वरूप [illegible] पीपल की परिक्रमा करते तथा महाकालेश्वर के दर्शन करते हुए डॉ. कर्णसिंह जी।


आशुतोष भगवान् शिव शंकर की पूजा-अर्चना करते महाराजा डॉ. कर्णसिंह जी।


आशुतोष भगवान् शिव शंकर की पूजा-अर्चना करते महाराजा डॉ. कर्णसिंह जी।

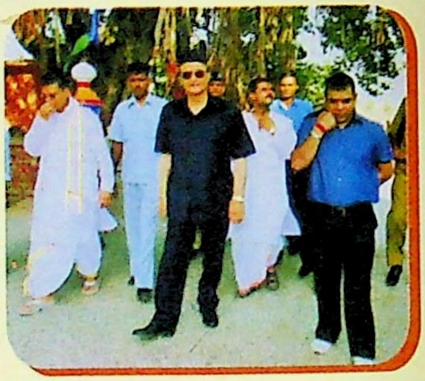

यज्ञशाला में हवन करते हुए महाराजा कर्णसिंह जी


यज्ञशाला की परिक्रमा करते महाराजा कर्णसिंह जी


[illegible] प्रसाद स्वरूप भोजन लेते हुए सांसद डॉ. कर्णसिंह न्यासियों के साथ

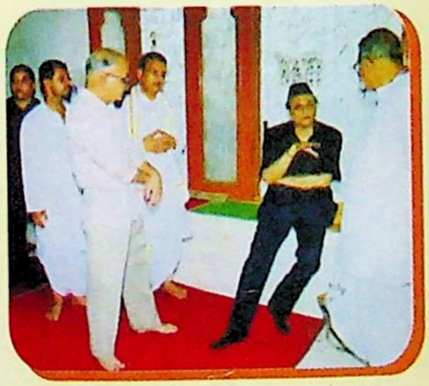
कनखल हरद्वार में जम्मू व कश्मीर धर्मार्थ ट्रस्ट द्वारा निर्मित शिव मन्दिर तथा परिसर में संचालित संस्कृत - कर्मकाण्ड - शिक्षण - संस्थान में प्रबन्धकों एवं शिक्षार्थियों के बीच अभिवादन स्वीकारते डॉ. कर्णसिंह



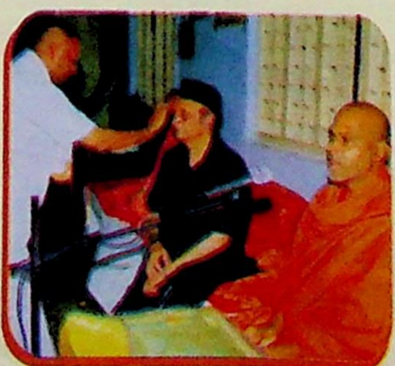


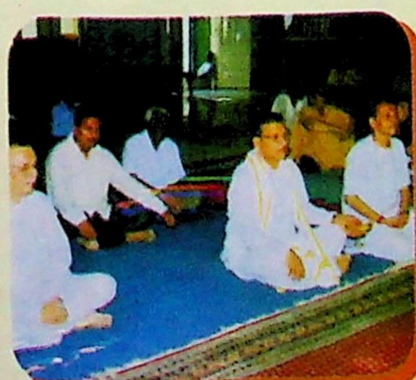
दयामयी माँ के आश्रम में प्रबन्धकों से परिसर में प्रसन्न मुद्रा में विचार-विमर्श करते डॉ. कर्णसिंह





आश्रम के सभागार में महाराजा डॉ. कर्णसिंह जी को टीका करते प्रबन्धक व्यक्ति एवं प्रवचन करते संन्यासी महात्मा तथा गण्यमान्य व्यक्तियों को निजी विचारामृत से मुग्ध करते सांसद, डॉ. कर्णसिंह





श्री गंगा-संग्रह

वर्षः 2 अंकः 4 जुलाई–अगस्त, 2010 द्विमासिक

जम्मू–कश्मीर की नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक पत्रिका

आषाढ़ प्रविष्टा 17 वि0 संवत् 2067 आषाढ़ कृष्ण पंचमी, ग्रीष्म ऋतु उत्तरायण से
भाद्रपद वि0 16 संवत् 2067 वर्षा ऋतु दक्षिणायन, भाद्रपद कृष्ण षष्ठी तक

Cover Design: Karan Kapoor

प्रमुख संपादक
पवनकुमार शास्त्री

संपादक
डॉ0 ओम् गोस्वामी

सह संपादक
जगदीश चन्द्र

श्री गंगा–संग्रह
में प्रकाशनार्थ सामग्री तथा शुल्क सहयोग राशि भेजने का पता –
संपादक
श्री गंगा–संग्रह
जम्मू यात्री–भवन
गली दारुगिरां (डाकबंगला के सामने वाली गली)
जम्मू तवी–180001 (जम्मू–कश्मीर)
फ़ोन नं०: 0191–2565858, 2574881
मो०:09906085058
email: pshastri8@gmail.com
e.mail: jammu_yatri_bhawan@ rediffmail.com
website: www.jammuyatribhawan.in

प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक पवन कुमार शास्त्री द्वारा कौशल ऑफसैट डिज़ाइनर प्रिंटर्स, ड्रीमलैण्ड पब्लिक स्कूल के सामने, जानीपुर, जम्मू से मुद्रित करवाकर, जम्मू यात्री भवन, गली दारुगिरां, डाकबंगला के सामने वाली गली, जम्मू से जारी किया गया।

विषयानुक्रम

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः –
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वांके सकुम्भौ करौ।
अक्षस्रङ्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्धस्थचन्द्रस्रवत् –
पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युञ्जयम्।।

मुख पृष्ठ में प्रदर्शित भगवान् मृत्युञ्जय के आठ हाथ हैं। वे अपने ऊपर वाले दोनों करकमलों से दो घड़ों को उठाकर उसके नीचे के दो हाथों से जल को अपने सिर पर उंडेल रहे हैं। सबसे नीचे के दो हाथों में भी दो घड़े लेकर उन्हें अपनी गोद में रख लिया है। शेष दो हाथों में वे रुद्राक्ष की माला तथा मृगी–मुद्रा धारण किये हुए हैं। वे कमल के आसन पर बैठे हैं और उनके शिरःस्थ चन्द्र से निरन्तर अमृतवृष्टि के कारण उनका शरीर भीगा हुआ है। उनके तीन नेत्र हैं तथाँ उन्होंने मृत्यु को सर्वथा जीत लिया है, उनके वामांगभाग में गिरिराजनन्दिनी भगवती उमा विराजमान हैं।'

साधक करन्यास, हृदयादि–न्यास करने के बाद उपर्युक्त श्लोक में वर्णित मृत्युञ्जय त्र्यम्बकेश्वर का ***ध्यान*** करते हुए निम्नलिखित सम्पुट मंत्र का रूद्राक्ष माला से कम–से–कम सवा लाख जप करे; परंतु सारे विधि–विधान के लिए किसी विद्वान् पंडित से परामर्श अवश्य कर ले।

मंत्र

ऊँ हौं जूँ सः, ऊँ भूर्भुवः स्वः। ऊँ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। स्वः भुवः भूः ऊँ। सः जूँ हौं ऊँ।।
यह सम्पुट–युक्त मन्त्र है। इसका प्रायः सवा लाख जप संर्वार्थसाधक माना गया है। जपके बाद इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए–

गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर।।
मृत्युंजय महारुद्र त्राहि मां शरणागतम्।
जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः।।

जपके अन्त में दशांश हवन, उसका दशांश तर्पण, उसका दशांश मार्जन तथा ब्राह्मण–भोजन आदि करना–कराना चाहिए।

थाती

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे
सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्
उर्वारुकमिव बन्धनान्
मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।
–ऋ. 7.59.12

मंत्र का भावार्थ

हम सुरभित पुण्य, कीर्ति एवं पुष्टिवर्धक (पोषण साधनों को बढ़ाने वाले) तथा तीन प्रकार से संरक्षण देने वाले (त्र्यम्बक) भगवान् की उपासना करते हैं। वे रुद्रदेव हमें उर्वारुक फल (ककड़ी–खरबूजा आदि) की तरह मृत्युबन्धन से मुक्त करें, (परंतु) अमरता के सूत्रों से दूर न करें।

(आचार्य सायण ने ''त्र्यंबक'' का अर्थ त्रिदेवों–ब्रह्मा, विष्णु, महेश का पितृरूप देव भी किया है। जिस प्रकार ककड़ी–खरबूजा आदि पकने पर डंठल से सहज छूट जाते हैं, वैसे ही हम मृत्यु या संसार से मुक्त हो जाएँ; किंतु अमृतत्व से जुड़े रहें, ऐसी प्रार्थना की गई है।)



26 जनवरी, 1940   24 जुलाई, 2006

जम्मू यात्री भवन के संस्थापक प्रधान

स्व० श्री सतपाल लंगर जी

की

चौथी पुण्यतिथि पर

जम्मू यात्री भवन न्यास, कार्यकारिणी एवं सदस्यों की ओर से

हार्दिक विनम्र श्रद्धांजलि

संपादकीय

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः।।

(सभी आगम–शास्त्र सर्वप्रथम सदाचार की परिकल्पना करते हैं। सदाचार से धर्म की उत्पत्ति होती है। धर्म के प्रभु, अच्युत हैं जो पूर्णतया त्रुटिविहीन हैं।)

जम्मू को धर्म की नगरी कहा जाता है। यहाँ के निवासी ईश्वर विश्वासी हैं। धार्मिक अंतर्दृष्टि के कारण वे अपनी वैदिक, लौकिक, देशज एवं स्थानीय पूजा–पद्धतियों का अनुसरण करते हुए परितोष प्राप्त करते आए हैं। दूसरे धर्मों के प्रति वे अत्यधिक सहनशील हैं। शायद इसका कारण हिन्दू धर्म का वह व्यापक दृष्टिकोण है जो बहुधर्मवाद के फैलाव से न तो आतंकित होता है और न ही उसका विरोध करता है। यह दृष्टिकोण ***''वसुधैव कुटुम्बकम्''*** का व्यावहारिक उद्घोष है। यह उद्घोष मानवीयता के उच्चतम मूल्यों में ***सर्वोच्च*** है।

वर्तमान में धार्मिक–पर्यटन के कारण जम्मू नगर का महत्त्व और भी बढ़ गया है। प्रतिवर्ष की भांति ***जुलाई*** से त्यौहारों के महीनों का समारंभ हो जाता है। इस दौरान जम्मू नगर में गहमा–गहमी बहुत बढ़ जाती है। वैष्णो देवी के यात्रियों के अतिरिक्त बाबा अमरनाथ बर्फानी के दर्शनार्थी, बज़रिया जम्मू हिमालय क्षेत्र (कश्मीर) की सुप्रसिद्ध गुफ़ा में जाते हैं। जम्मू प्रांत में स्थित अन्य तीर्थों और पर्यटन–स्थलों के यात्रियों की संख्या भी खूब बढ़ जाती है। जम्मू में भीड़–भाड़ के दौरान दो बातों का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है–

1. संदिग्ध लोगों से सावधान रहें। अपरिचित लोगों से कोई वस्तु खाएं–पिएं नहीं। ज़हर–खुरानी गिरोहों से बचने का यही एक तरीका है।
2. वाहनों की बढ़ोतरी के कारण, सड़क को पार करते समय विशेष रूप से सचेत रहें।

गत कुछ वर्षों से कुछेक दुकानदारों मुनाफ़ाखोरी को एकमात्र उद्देश्य बना लिया है। पर्यटकों के लुभाने के लिए वे ''चींगू'' और ''खटोलू'' का सहारा ले रहे हैं। पर्यटक को भ्रमित करके या ग़लत–बयानी करके उनके कपड़े उतार लेना कहाँ तक जायज़ है– इस पर विचार की आवश्यकता है। दुकानदार के व्यवहार में शिष्टता और पारदर्शिता रहनी चाहिए। इसी से पर्यटक दूसरे लोगों को जम्मू की यात्रा पर जाने के लिए प्रेरित करेगा। इसी से हमारे नगर का चरित्र विकसित होगा।

धन्यवाद!

पवनकुमार शास्त्री
(99060–85058)

संक्षिप्त पञ्चांग, प्रविष्टा (तारीख़), तिथि, नक्षत्र, वार

वि. स. 2067, सन् ई. 2010, जुलाई सूर्य दक्षिणायन, उत्तर गोल, वर्षा ऋतु आषाढ़ कृष्ण पंचमी गुरुवार से 31 जुलाई श्रावण कृष्ण पंचमी शनिवार तक

जुलाई 2010 तारीख	वार	आषाढ़/श्रावण प्रविष्टा	आषाढ़ कृष्ण पक्ष/तिथि	समाप्ति काल घ. मि.	नक्षत्र	समाप्ति काल घ. मि.	चन्द्र राशि संचार	जम्मू सू॰ उ॰ घ. मि.	जम्मू सू॰ अं॰ घ. मि.	विवरण घंटा मिंटों में (भा.स्टै.टा.)
01.	गुरु	आषाढ़. प्र.17	आषाढ़ कृ.5	26/46	धनि.	08/02	कुम्भ	05/31	19/38	
02.	शुक्र	आ. प्र. 18	कृ. 06	29/07	शत.	11/02	कुम्भ	05/31	19/38	भद्रा 29/08 के बाद
03.	शनि	आ. प्र. 19	कृ. 07	पूरा दिन	पू.भा.	13/54	मीन 7/13	05/32	19/38	भद्रा 18/10 तक
04.	रवि	आ. प्र. 20	कृ. 07	07/13	उ.भा.	16/27	मीन	05/32	19/38	
05.	सोम	आ. प्र. 21	कृ. 08	08/49	रेवती	18/29	मेष 18/29	05/32	19/38	***पंचक समाप्ति 18/29***
06.	मं.	आ. प्र. 22	कृ. 09	09/49	अश्वि	19/52	मेष 05/43	05/33	19/38	भद्रा 21/57 के बाद
07.	बु.	आ. प्र. 23	कृ. 10	10/06	भर	20/32	वृष 26/35	05/33	19/38	भद्रा 10/06 तक
08.	गुरु	आ. प्र. 24	कृ. 11	09/37	कृति.	20/27	वृष	05/34	19/38	योगिनी एकादशी व्रत
09.	शुक्र	आ. प्र. 25	कृ. 12	08/24	रोहि.	19/40	वृष	05/34	19/37	प्रदोष व्रत
10.	शनि	आ. प्र. 26	कृ. 13/14	06/31	मृग.	18/16	मिथुन 7/2	05/35	19/37	भद्रा 6/31 से 17/18 तक
	शनि	....	कृ. 13/14	28/4	....	....	....	......	....	चतुर्दशी तिथिक्षय
11.	रवि	आ. प्र. 27	कृ. 30	25/11	आर्द्रा	16/22	मिथुन	05/36	19/37	***आषाढ़ी अमावस्या स्नान, दान द्रव पितृकार्य हेतु,***
12.	सोम	आ. प्र. 28	आषाढ़ शु.1	21/59	पुन.	14/05	कर्क 8/41	05/36	19/37	आषाढ़ शुक्ल पक्ष प्रारम्भ
13.	मं.	आ. प्र. 29	शी 02	18/39	पुण्य.	11/37	कर्क	05/37	19/36	***जगन्नाथ पुरी रथ यात्रा***
14.	बु॰	आ॰ प्र॰ 30	शु. 03	15/18	आश्ले.	09/05	सिंह 09/05	05/37	19/36	भद्रा 25/42 से
15.	गुरु॰	आ॰ प्र॰ 31	शु. 04	12/06	मघा	06/39	सिंह	05/38	19/36	भद्रा 12/06
					पू.फा	28/27				
16.	शुक्र॰	श्रावण. प्र. 01	शु. 05	09/10	उ.फा	26/37	कन्या 09/57	05/38	19/36	***सूर्य कर्क में/श्रावण संक्रान्ति/ पुण्यकाल मध्याह्न के बाद***
17.	शनि॰	श्र. प्र. 02	शु. 06	06/36	हस्त	25/14	कन्या	05/39	19/35	भद्र 28/31 से
	शनि.	श्र॰ प्र॰ 02	शु. 07	28/31	....	....	....	....	....	सप्तमी तिथि का क्षय
18.	रवि॰	श्र॰ प्र॰ 03	शु. 08	26/59	चित्रा	24/23	तुला 12/44	05/39	19/35	भद्रा 15/45 तक दुर्गाष्टमी
19.	सोम॰	श्र॰ प्र॰ 04	शु. 09	26/10	स्वा.	24/06	तुला	05/40	19/35	***मेला शारिका भवानी (कश्मीर)***
20.	मं॰	श्र॰ प्र॰ 05	शु. 10	25/37	विशा.	24/24	वृश्चिक 18/16	05/41	19/35	
21.	बु॰	श्र॰ प्र॰ 06	शु. 11	25/47	अनु.	25/15	वृश्चिक	05/42	19/34	भद्रा 13/42 से 25/47 तक ***हरिशयिनी एकादशी व्रत***
22.	गुरु॰	श्र॰ प्र॰ 07	शु. 12	26/29	ज्ये.	26/36	धनु 26/36	05/42	19/34	
23.	शुक्र॰	श्र॰ प्र॰ 08	शु. 13	27/38	मूल.	28/25	धनु	05/42	19/33	प्रदोष व्रत
24.	शनि॰	श्र॰ प्र॰ 09	शु. 14	29/12	पू.षा	पूरा दिन	धनु	05/43	19/32	भद्रा 29/12 से
25.	रवि॰	श्र॰ प्र॰ 10	शु. 15	पूरा दिन	पू.षा	06/37	मकर 13/13	05/44	19/32	भद्रा 18/10 तक आषाढ़ी पूर्णिमा
										गुरु पूर्णिमा (व्यास पूजा)
26.	सोम॰	श्र॰ प्र॰ 11	शु. 15	07/07	उ.षा.	09/09	मकर	05/45	19/31	आषाढ़ी पूर्णिमा
27.	मं॰	श्र॰ प्र॰ 12	श्रावण कृ. 1	09/17	श्रवण.	11/55	कुम्भ 25/23	05/45	19/30	श्रावण कृ. प्र॰, ***पंचक प्र॰ 25/23***
28.	बुध॰	श्र॰ प्र॰ 13	श्रावण कृ.2	11/39	धनि.	14/52	कुम्भ	05/46	19/30	भद्रा 24/52 से प्रारम्भ
29.	गुरु०	श्र॰ प्र॰ 14	श्रावण कृ.3	14/5	शत.	17/53	कुम्भ	05/47	19/29	भद्रा 14/05 ***तक श्री गणेश चतुर्थी व्रत***
30.	शुक्र०	श्र. प्र. 15	श्रावण कृ.4	16/30	पू.भा.	20/50	मीन 14/07	05/47	19/27	
31.	शनि०	श्र. प्र. 16	श्रावण कृ.5	18/43	उ.भा.	23/36	मीन	05/48	19/27	***नागपंचमी राजस्थान व बंगाल***

संक्षिप्त पञ्चांग, प्रविष्टा (तारीख़), तिथि, नक्षत्र, वार

व. स. 2067, सन् 2010, 1 अगस्त सूर्य दक्षिणायन, उत्तर गोल, शरद् ऋतु श्रावण कृष्ण 6वीं शनिवार से 31 अगस्त भाद्रपद कृष्ण षष्ठी मंगलवार तक

अगस्त 2010 तारीख	वार	श्रावण/ भाद्रपद प्रविष्टा	श्रावण कृष्ण 6ठी से भाद्रपद कृ. 6ठी से पक्ष/तिथि	समाप्ति काल घं॰ मि॰	नक्षत्र	समाप्ति काल घं॰ मि॰	चन्द्र राशि संचार	जम्मू सू॰ उ॰ घ. मि.	जम्मू सू॰ अ॰ घ. मि.	विवरण (घं. मि. में.) मा. स्टै. टा
01.	रवि॰	श्रा.प्र.17	कृष्ण 06	20/36	रेवती	26/00	मेष 26/00	05/48	19/25	भद्रा. 20/37 से/ ***पंचक समाप्त 26/1***
02.	सोम॰	श्रा.प्र. 18	कृष्ण 07	22/00	अश्वि॰	27/54	मेष	05/49	19/25	भद्रा 9/19 तक
03.	मं॰	श्रा.प्र. 19	कृष्ण 08	22/46	भर॰	29/10	मेष	05/49	19/24	
04.	बुध॰	श्रा.प्र. 20	कृष्ण 09	22/49	कृत्ति॰	29/42	वृष 11/22	05/50	19/23	
05.	गुरु॰	श्रा.प्र. 21	कृष्ण 10	22/05	रो॰	29/28	वृष	05/51	19/23	भद्रा 10/27 से 22/05 तक
06.	शु॰	श्रा.प्र. 22	कृष्ण 11	22/35	मृग॰	28/29	मिथुन 17/3	05/52	19/22	***कामिका एकादशी व्रत***
07.	शनि॰	श्रा.प्र. 23	कृष्ण 12	18/22	आर्द्रा॰	26/49	मिथुन	05/27	19/21	शनि प्रदोष व्रत
08.	रवि॰	श्रा.प्र. 24	कृष्ण 13	15/33	पुन॰	24/36	कर्क 19/12	05/53	19/20	भद्रा 15/33 से 25/54 तक
09.	सोम॰	श्रा.प्र. 25	कृष्ण 14	12/15	पुष्य॰	21/57	कर्क	05/53	19/19	***सोमवती अमावस्या 12/15 के बाद (पितृकार्य)***
10.	मं॰	श्रा.प्र. 26	कृष्ण 30	08/38	आश्ले॰	19/04	सिंह 19/4	05/54	19/18	हरियाली अमावस्या स्नानदानादि।
	मं॰	....	श्रावण शु.1	28/51	......	....	....	....	....	श्रावण शुक्ल प्रतिपदा तिथिक्षय।
11.	बु॰	श्रा.प्र. 27	श्रावण शु.2	25/06	मघा॰	16/06	सिंह	05/55	19/17	***मेला छिन्नमस्तिका (चिन्तपूर्णी)*** प्रारम्भ
12.	गु॰	श्रा.प्र. 28	श्रावण शु.3	21/32	पू.फा॰	13/15	कन्या 18/35	05/56	19/16	हरियाली सिंघारा तीज
13.	शु॰	श्रा.प्र. 29	श्रावण शु.4	18/19	उ.फा.	10/42	कन्या	05/57	19/15	भद्र 07/56 से 18/19 तक दूर्वागणपति व्रत
14.	श॰	श्रा.प्र. 30	श्रावण शु.5	15/36	हस्त	08/36	तुला 19/46	05/57	19/13	***नागपंचमी, श्रीकल्कि जयंती***
15.	रवि॰	श्रा.प्र. 31	श्रावण शु.6	13/31	चित्रा	07/06	तुला	05/58	19/12	***भारत स्वतंत्रता दिवस***
16.	सोम.	श्रा.प्र. 1	श्रावण शु.7	12/08	स्वा.	06/17	वृश्चिक 24/10	05/59	19/11	भद्रा 12/08 से 23/50 तक ***भाद्रपद संक्रान्ति।***
17.	मं॰	भा.प्र. 2	श्रावण शु.8	11/31	विशा.	06/13	वृश्चिक	05/59	19/10	श्री दुर्गाष्टमी
18.	बु॰	भा.प्र. 3	श्रावण शु.9	11/39	अनु.	06/52	वृश्चिक	06/00	19/09	गण्डमूल 6/52 से प्रारम्भ
19.	गु॰	भा.प्र. 4	श्रावण शु.10	12/27	ज्ये.	08/12	धनु 8/12	06/00	19/08	भद्रा 25/08 से, गण्डमूलादि
20.	शु॰	भा.प्र. 5	श्रावण शु.11	13/49	मूल	10/07	धनु	06/01	19/06	भद्रा 13/49 तक, एकादशी व्रत।
21.	श॰	भा.प्र. 6	श्रावण शु.12	15/39	पू.षा	12/29	मकर 19/8	06/01	19/05	***शनि प्रदोष व्रत***
22.	रवि॰	भा.प्र. 7	श्रावण शु.13	17/48	उ.षा	15/11	मकर	06/02	19/04	
23.	सोम॰	भा.प्र. 8	श्रावण शु.14	20/08	श्रव.	18/04	मकर	06/02	19/03	भद्रा 20/08 से
24.	मं॰	भा.प्र. 9	श्रावण शु.15	22/35	धनि.	21/03	कुम्भ 7/33	06/03	19/02	भद्रा 9/22 तक, ***श्रावण पूर्णिमा, रक्षाबन्धन***
25.	बु.	भा.प्र. 10	भाद्रपद कृ.1	25/01	शत॰	24/03	कुम्भ	06/04	19/01	भाद्रपद कृष्णपक्ष प्रारम्भ
26.	गुरु॰	भा.प्र. 11	भाद्रपद कृ.2	27/24	पू॰ भा.	26/58	मीन 20/15	06/04	19/00	
27.	शु॰	भा.प्र. 12	भाद्रपद कृ.3	29/36	उ.भा.	29/45	मीन	06/05	18/59	भद्रा 16/30 से 29/36 तक
28.	शनि॰	भा.प्र. 13	भाद्रपद कृ.4	पूरा दिन	रेव॰	पूरा दिन	मीन	06/06	18/57	श्री गणेश संकष्ट चतुर्थी व्रत
29.	रवि॰	भा.प्र. 14	भाद्रपद कृ.4	07/34	रेव॰	08/17	मेष 8/17	06/07	18/54	***पंचक समाप्त 8/17***
30.	सोम.	भा.प्र. 15	भाद्रपद कृ.5	09/10	अश्वि॰	10/28	मेष	06/07	18/54	***चन्दन षष्ठी***
31.	मं	भा. प्र.16	भाद्रपद कृ.6	10/18	भर.	12/11	वृष 18/31	6/08	18/53	भद्रा 10/18 से 20/34 तक



29 आषाढ़ शुक्ल द्वितीया मंगल वार *13 जुलाई 2010* को पुष्य नक्षत्र होने से विशेषकर ***पुरी उड़ीसा*** में तथा देश– विदेश के विभिन्न स्थानों में श्री जगन्नाथ भगवान् को सुभद्रा सहित रथ में विराजमान करके भ्रमण करवाया जाएगा। उस दिन जगन्नाथ पुरी में रथयात्रा का अनुपम उत्सव होता है। देश–देशान्तर के लाखों नर–नारी इकट्ठे होकर भगवान् की इस रथ यात्रा के उल्लासमय वातावरण में शामिल होकर पुण्य लाभ कमाते हैं।

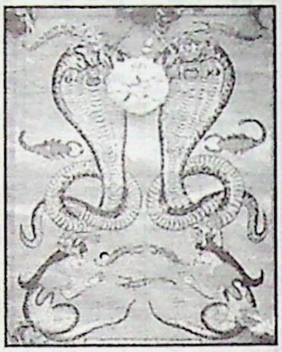
इस बार आषाढ़ शुक्ल एकादशी अर्थात् ***देवशयनी एकादशी 21 जुलाई, 2010*** बुधवार को है। इसी दिन चौमासा के व्रतादि नियम शुरू होंगे तथा 17 नवम्बर, 2010 बुधवार को ***हरि प्रबोधिनी एकादशी*** व्रत के साथ सम्पूर्ण होंगे।

इस बार आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा *25 जुलाई, 2010* रविवार को पूरा दिन तथा सोमवार को भी 7 बजकर 7 मिनट तक व्याप्त रहेगी। रविवार को पूरा दिन एवं पूरी रात तक व्याप्त होने से इसी दिन ***गुरु पूर्णिमा*** पर्व मनाया जाएगा। सभी लोग व्यास पूजा एवं अपने–अपने गुरुजनों की शक्ति के अनुसार विधि विधान से पूजादि करके अन्न, वस्त्र, फलादि दान एवं दक्षिणादि से उनका सम्मान करेंगे।



9 अगस्त, 2010 सोमवार दोपहर 12 बजकर 15 मिनट के बाद सोमवती अमावस के अवसर पर पितृऋण चुकाने के लिए श्री गंगा आदि तीर्थों पर स्थान–दान जप और पितृ तर्पण करने तथा ब्राह्मणों को भोजन कराने का विशेष महत्त्व होगा।

14 अगस्त, 2010 शनिवार को नागपंचमी होने से इस दिन अपने घर की दहलीज के दोनों ओर गोबर से सर्प का आकार बनाकर सर्पराज की दूध, दूर्वा, कुशा, गन्ध, पुष्प, अक्षत (चावल) लड्डुओं सहित पूजा करके नागस्तोत्र का पाठ करने से घर में विषधारी सर्पो का भय नहीं रहेगा।



इस वर्ष मंगलवार *24 अगस्त, 2010* को श्रावण शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा होने से रक्षाबन्धन (रक्खड़ी) पर्व भी ***इसी रोज़ सुबह 9 बजकर 22 मिनट के बाद ही*** मनाया जाएगा क्योंकि प्रात: 09:22 तक भूलोक की भद्रा हैं।



15 अगस्त, 2010 रविवार को 64 वाँ भारत स्वतन्त्रता दिवस मनाते दिल्ली में लाल किले की प्राचीर (दीवार) से राष्ट्र ध्वज को नमन करते हुए प्रधानमंत्री राष्ट्र को सम्बोधित करेंगे।



30 अगस्त, 2010 सोमवार को चन्दन–षष्ठी व्रत होगा। रात को चन्द्रमा के 9 बजकर 43 मिनट के बाद ही दर्शन होंगे।

श्रावण संक्रान्ति फल

श्रावण मास में 5 मंगलवार होने से सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्रों के लिए किसी नेता के अपदस्थ या मृत्यु के योग हैं। 16 जुलाई, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में रात के 9 बजकर 11 मिनट याने 21/11 पर सूर्य कर्क राशि में प्रवेश करेगा। 45 मुहूर्ति इस संक्रान्ति का पुण्य काल दोपहर से शुरू होगा। यह संक्रान्ति ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र में होने से द्विजों (ब्राह्मणों) के लिए लाभकारी व सुखकारक होगी। श्रावण मास क्षत्रिय वैश्यों में अमर सुख कारक नाथ यात्रा का भी विशेष महत्त्व तथा भगवान् शंकर जी की पूजा का भी विशेष महत्त्व होता है। हर रोज़ श्रावण माहात्म्य श्री शिवमहापुराण तथा श्री शिवस्तोत्रों का विधि पूर्वक पाठ करके पंचामृत (बिल्वपत्र, ॠतु फलादि सहित दूध, दही, घी, शहद, गंगाजल) शर्करादि सहित शिवलिंग का पूजन करना श्रेयस्कर होता है तथा 'ऊँ नमः शिवाय' मंत्र का जप करते हुए विधिविधान से यह सब करना चाहिए। इस श्रावण महीने हर मंगलवार को श्री मंगलागौरी का व्रत, पूजादि विधि पूर्वक करने से स्त्रियों को विवाह, सन्तान, सौभाग्यादि सुखों की प्राप्ति होती है। 21 जुलाई, बुधवार के रोज़ देवशयनी एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी बुधवार 17 नवम्बर, 2010 तक तपस्वी लोग चौमासे के व्रतादि नियमों का पालन करते हुए चातुर्मास पूर्ण करते हैं। 25 जुलाई, 2010 रविवार को गुरु पूर्णिमा का शुभ पर्व मनाया जाएगा।

राशिफलः– मेष, वृष, सिंह, कन्या, वृश्चिक और मीन राशि वालों के लिए यह संक्रान्ति शुभ और लाभदायक रहेगी।

भाद्रपद संक्रान्ति फल

सोमवार, 16 अगस्त 2010 को रात को 29–34 मिनट याने 16/17 की रात्रि प्रातः 5 बजकर 34 मिनट पर सूर्य कर्क से सिंह राशि में प्रवेश करेगा। 45 मुहूर्त्ति संक्रान्ति का पुण्य काल अगले दिन 17 अगस्त मंगलवार को दोपहर तक रहेगा। ध्वांक्षी नाम वाली यह संक्रान्ति वैश्य वर्ग को लाभ एवं सुख देने वाली होगी। इस महीने में पुत्रदा (पवित्रा) एकादशी व्रत तथा भाद्रपद कृष्णाष्टमी को श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का व्रत विशेष रूप से सन्तानादि सुखों के लिए करना शुभ फलदायक होता है। यह संक्रान्ति मेष, मिथुन, कर्क, सिंह, वृश्चिक, धनु, मकर और मीन राशि वालों के लिए शुभ फलदायक होगी। 24 मंगलवार को श्रावण पूर्णिमा के रोज़ रक्षाबन्धन का त्योहार और अमरनाथ यात्रा की समाप्ति होगी। 17 अगस्त को माता चिन्तपूर्णी (छिन्न मस्तिका) का पावन मेला शुरू होगा। रक्खड़ी भद्रा के कारण प्रातः 9:22 के बाद ही मनाई जाएगी।

सर्वार्थ सिद्धि योग	***अमृत सिद्धि योग***	***रवि पुष्य योग***	***सर्वार्थ सिद्धियोगों में***
जुलाईः 4, 6, 7, 8, 12, 13, 14, 21, 25, 26, 27 अगस्तः 1, 2, 4, 5, 8, 9, 10, 18, 22, 23, 28, 29, 30, 31	जुलाईः 6, 21 अगस्तः 18, 28 ***द्विपुष्कर योग*** जुलाईः 17, 18, 27, 28 ***त्रिपुष्कर योग*** जुलाईः 3 अगस्तः 21, 31	अगस्तः 8, 9 ***रवियोग*** जुलाईः 2, 3, 14, 15, 16, 18, 21, 24, 25, 31 अगस्तः 1, 12, 13, 14, 15, 18, 20, 22, 23, 30, 31	अनुबन्ध करना, परीक्षा, नौकरी अथवा चुनाव आदि के लिए आवेदन करना, खरीद-फ़रोख्त करना, यात्रा या मुकद्दमा करना, भूमि, सवारी, वस्त्र-आभूषणादि खरीदना वगैरह-2 कृत्य किये जा सकते हैं। ***अमृतसिद्धि योग में*** पहले कहे गए कृत्यों के अलावा प्रेम विवाह करना, विदेश यात्रा, किसी कार्य सिद्धि के लिए सकाम अनुष्ठान करना आदि। ***रवि योग, गुरु पुष्य योग आदि*** दूसरे कुयोगों का नाश करके शुभफल देता हैं।

कार्य सिद्धि के लिए होरा ज्ञान–चक्र

सूर्योदय से लेकर अगले दिन सूर्योदय तक प्रत्येक एक–एक घंटे तक नित्य सातों ग्रहों की होराएँ चलती हैं। प्रथम होरा उसी वार की, अगली होरा उससे छठेवार की होती है, इसी प्रकार 24 घंटों में 24 होराएँ होती हैं। जो काम जिस दिन करना शुभ माना जाता है, वह काम उस ग्रह की होरा में किसी भी दिन किया जा सकता है। प्रत्येक एक–एक घंटे के अन्तर से हर वार की होरा (Hour) आसानी से इस चक्र से आप जान सकते हैं।

वार	होरा 1	होरा 2	होरा 3	होरा 4	होरा 5	होरा 6	होरा 7	होरा 8	होरा 9	होरा 10	होरा 11	होरा 12	होरा 13
रवि	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु
सोम	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र
मंगल	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि
बुध	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि
गुरु	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम
शुक्र	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल
शनि	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध

होरा 14	होरा 15	होरा 16	होरा 17	होरा 18	होरा 19	होरा 20	होरा 21	होरा 22	होरा 23	होरा 24
मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध
बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु
गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र
शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि
शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि
रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम
सोम	शनि	गुरु	मंगल	रवि	शुक्र	बुध	सोम	शनि	गुरु	मंगल

रवि की होरा : शासकीय कार्य, नौकरी आदि के लिए शुभ होती है। निविदाओं के आदान–प्रदान तथा सरकारी कार्य के दायित्व लेने व देने के लिए भी शुभ होती है। ***सोम की होरा :*** सर्वकार्य सिद्धि के लिए उत्तम होती है। ***मंगल की होरा :*** युद्ध, मुकद्दमे, विवाद, जुए, यात्रा, ऋण लेने–देने, सभा और समाज में जाने–आने के लिए शुभ होती है। ***बुध की होरा :*** कला, काव्य, गणित आदि के शुभारम्भ, 'धन–संग्रह, तथा व्यापार आरम्भ करने, पुस्तक–प्रकाशन तथा आवेदन प्रस्तुत करने हेतु शुभ होती है। ***गुरु की होरा :*** विवाह आदि मांगलिक कार्य, पूजन, यज्ञ आदि शुभ कार्य हेतु, वृद्ध व आदरणीय व्यक्तियों के दर्शन हेतु, कोष संचय के लिए, विद्या व ज्ञान प्राप्ति के लिए, नव काव्य सम्पादन व प्रकाशन हेतु अनेक कार्यों में सिद्धि हेतु अभीष्ट है। ***शुक्र की होरा :*** नववस्त्र, आभूषण धारण करने के लिए, यात्रारम्भ तथा विवाह सम्बन्धी सौभाग्यवर्द्धक कार्यों के लिए, नाटक, चलचित्र आदि सम्बन्धी सभी कलात्मक कार्यों के लिए शुभ होती है। ***शनि की होरा :*** धन–संग्रह, नवगृह तथा भवन–निर्माण आरम्भ करने के लिए, भूमि तथा भवन की नींव रखने के लिए, कल–कारखानों, यन्त्रों सम्बन्धी कार्य सिद्ध करने हेतु तथा सर्वप्रकारेण स्थिर कार्य सिद्धि हेतु शुभ होती है।

राहु कालः– दक्षिण भारत में राहु काल को शुभ कार्यों के लिए वर्जित माना जाता है। यह प्रतिदिन डेढ़ घंटे (1½) के लिए होता है। इसे शुभ कार्यों में यथा संभव टाल देना चाहिएः

सोमवार– प्रातः 07:30 से 09:00 बजे तक।
मंगलवार– अपरान्ह 03:00 से 04:30 बजे तक।
बुधवार– मध्यान्ह 12:00 से 1:30 बजे तक।
गुरुवार– 01:30 बजे दोपहर से 03:00 बजे तक।
शुक्रवार– 10:30 बजे से 12:00 बजे तक।
शनिवार– प्रातः 09:00 से 10:30 बजे तक।
रविवार– सायं 04:30 से 06:00 बजे तक।

ज्वालामुखी योगः– ज्वालामुखी योग अत्यन्त अनिष्ट–कारी योगों में से एक माना गया है। इसमें आरम्भ किए कार्य में बार–बार विघ्न पड़ते हैं। इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित लोकोक्ति का प्रचलन है–

जन्मे तो जीवे नहीं, बसे तो उजड़े गांव।
नारी पहने चूड़ियाँ, पुरुष विहीनी होय॥ बोवे तो काटे नहीं, कूएँ उपजे न नीर॥

यद्यपि यह लोकोक्ति अतिशयोक्तिपूर्ण हो सकती है, परंतु इसके अशुभ प्रभाव के सम्बन्ध का उल्लेख कई ग्रन्थों में मिलता है। ***ज्वालामुखी योगानुसार*** यदि बालक इस योग में पैदा हो तो उसे अरिष्ट योग होता है। यदि इस योग में विवाह किया जाए तो वैधव्य (विधवापन) का भय होता है। यदि बीजवपन किया जाए तो फसल अच्छी नहीं होती तथा जल आदि हेतु कुआँ खोदा जाए तो जलाशय (कुआँ) शीघ्र सूख जाए। यदि कोई रोग ग्रस्त हो तो जल्दी ठीक न हो। आदि–आदि अशुभ फल घटते हैं।

20 मार्च	5	भर.	प्रातः 6/32 से 12/47
23 अप्रै.	10	अश्ले.	प्रातः 8/37 से 13/52 तक
1 सितं.	8	कृति	प्रातः 10/51 से 13/19 तक
2 सितं.	9	रोहि	प्रातः 10/43 से 13/47 तक
6 दिसं.	1	मूला	सायं 17/56 से 22/20 तक
11 फर.	8	कृति.	प्रातः 9/50 से रात्रि 25/26 तक
12 फर.	9	रोहि.	प्रातः 11/30 से 26/07 तक
9 मार्च	5	भर.	दोप. 14/09 से 10 मार्च 14/13 तक

स्वामी नित्यानन्द जी

3

विद्याध्ययन

–प्रो. शिव निमोही/प्रो. प्रकाश प्रेमी

पिछले अंक मई–जून 10 के पृ. 28 से आगे

सन् 1884 ई. में जम्मू–कश्मीर धर्मार्थ ट्रस्ट की स्थापना की गई। इसकी स्थापना के लिए महाराजा गुलाब सिंह ने धन दिया था। महाराजा गुलाब सिंह धार्मिक प्रवृत्ति के नरेश थे। उनकी प्रवृत्ति और धार्मिक आस्थाओं को ध्यान में रखते हुए धर्मार्थ ट्रस्ट के तत्त्वावधान में महाराजा रणबीर सिंह ने जम्मू और उत्तर–वाहिनी में संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना की। महाराजा रणबीर सिंह स्वयं कम पढ़े–लिखे होते हुए भी विद्या प्रेमी थे और शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सेवाएं चिर–स्मरणीय हैं। धर्मार्थ–ट्रस्ट के मुख्य संरक्षक स्वयं महाराजा रणबीर सिंह थे। धर्मार्थ ट्रस्ट के संविधान में स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है कि ट्रस्ट द्वारा जम्मू में तीन संस्कृत पाठशालाएं खोली गई जिनमें सबसे बड़ी पाठशाला रघुनाथ मंदिर परिसर में थी जिसमें तीन सौ विद्यार्थियों की शिक्षा और आवासीय व्यवस्था थी। अन्य दो पाठशालाएं श्री रणवीरेश्वर मन्दिर और श्री गदाधर मन्दिर में खोली गई जिन में सौ–सौ शिक्षार्थियों की शिक्षा–व्यवस्था थी। रघुनाथ पाठशाला के मुख्याचार्य पं. गोकुलचन्द शर्मा और श्री गदाधर पाठशाला के मुख्याचार्य उन्हीं के आत्मज पण्डित गंगाधर जी थे। नित्यानन्द जी ने श्री गंगाधर जी का शिष्यत्व ग्रहण किया। उन्होंने अपनी लिखित एक पुस्तक ''त्रयोदश रत्न विवाह प्रकाश'' में अपने गुरु श्री गंगाधर जी का नाम विशेष आदर और सम्मान के साथ लेते हुए लिखा है– .... ''जम्मू पाठशालामुख्याध्यापक श्री 108 गंगाधर शर्मणा शिष्येन श्री 108 चन्द्रमौल्यात्मजेन नित्यानन्द शर्मणा, संग्रहीता।''



इसी पाठशाला में उनके बहनोई श्री लक्ष्मणदत्त जी ज्योतिष विषय के आचार्य थे। नित्यानन्द जी को इस पाठशाला का वातावरण अत्यन्त स्वच्छ और मनोनुकूल लगा। अक्षर–बोध तथा संस्कृत भाषा का किंचित् ज्ञान उन्हें यहां आने से पूर्व ही था। यहां प्रवेश लेने पर उन्हें गणित, चिकित्सा, नीति, ज्योतिष, तर्क और धर्मशास्त्र आदि के अध्ययन का अवसर भी प्राप्त हुआ। पाठशाला के सभी आचार्य अपने–अपने विषय के प्रसिद्ध विद्वान् और प्रकाण्ड पण्डित थे। उनका संसर्ग पाकर उनका बौद्धिक विकास अत्यन्त तीव्र गति से होने लगा। इस पाठशाला के प्रधानाचार्य श्री गंगाधर जी उच्चकोटि के संस्कृत साहित्यकार थे और ''आनन्दलहरी'' तथा ''बाडवानल'' जैसे साहित्यकार ग्रन्थों की रचना कर वे पर्याप्त प्रसिद्धि अर्जित कर चुके थे। नित्यानन्द जी को अपने गुरुओं से विशेष स्नेह मिला। ऐसा उनकी कुशाग्र बुद्धि के कारण था।

पाठशाला के नियम तथा व्यवस्था उत्तम और सुचारु थी। प्रत्येक मास विद्यार्थियों की परीक्षा ली जाती थी और उनकी प्रगति की सूचना–रपट सीधे महाराजा को भेजी जाती थी, नित्यानन्द जिस तीव्र गति से शिक्षा ग्रहण कर रहे थे उससे उनके आचार्य तथा बहनोई पूर्ण रूप से सन्तुष्ट थे। पाठशाला में प्रतिदिन विद्यार्थी लोग डेढ़ घंटे के लिए शास्त्रार्थ किया करते थे। इस शास्त्रार्थ में नित्यानन्द भी भाग लेते। उनके तर्कों में अन्य विद्यार्थी तो स्तम्भित होते ही थे, आचार्यगण भी उनकी विलक्षण प्रतिभा और तर्कशक्ति

देख विस्मित हो जाते। इन पाठशालाओं में विजयदशमी और रामनवमी महोत्सवों पर विशेष शास्त्रार्थ। प्रतियोगिताएं आयोजित होतीं जिनमें वे बढ़–चढ़कर भाग लिया करते थे। वहां सौ विद्यार्थियों पर एक मुख्य विद्यार्थी (मॉनीटर) के चयन की व्यवस्था थी। अपनी प्रतिभा और योग्यता के बल पर वे अनेक बार मॉनीटर चुने गए। पाठशाला में जो विद्यार्थी मन्द–बुद्धि होने के कारण विशेष प्रतिभा न दिखा पाते उन्हें छः मास के उपरान्त पाठशाला से निष्कासित करने की व्यवस्था थी। ऐसे विद्यार्थियों की वे सहायता करके उन्हें पढ़ाते। इससे उनके मन में सन्तोष होता था।

घर के वातावरण के कारण, उनके धार्मिक विचार और संस्कार पाठशाला में आकर और अधिक परिपुष्ट हुए। अपने सहपाठियों की भान्ति वे तीन बार दिन में सन्ध्या करते, पठन, अध्ययन और मनन में लगे रहते। विभिन्न पर्वोत्सवों पर धर्मार्थ ट्रस्ट की व्यवस्थानुसार वे मन्दिरों में की जाने वाली पूजा में सम्मिलित होते। विष्णु सहस्रनाम का पाठ वे प्रातः–सायं निरन्तर करते। उन दिनों ग्रीष्म ऋतु में पाठशाला प्रातः आठ से बारह बजे तक और शाम को तीन बजे से सायंकाल तक लगती थी। सर्दियों में प्रातः दस बजे से सूर्यास्त से पूर्व तक लगी रहती। वर्षा ऋतु में श्रावण मास में अवकाश रहता। प्रत्येक पर्व–त्योहार, प्रतिपदा और अष्टमी को भी अवकाश होता। जन्माष्टमी पर छः दिन के लिए और होली के अवसर पर तीन दिन के लिए पाठशाला बन्द रहती। अवकाश के दिनों में वे प्रायः जम्मू में ही अपने अध्ययन में व्यस्त रहते और अपने घर कल्लर में यदा–कदा ही आते।

इन दिनों के अतिरिक्त रामनवमी, चैत्र चतुर्दशी, वैशाखी, निर्जला एकादशी, व्यास पूजा, हरिशयनी एकादशी, अनन्त चतुर्दशी, सरस्वती शयन, भैया दूज, लोहड़ी, मकर संक्रान्ति, बसन्त पंचमी और महाशिवरात्रि आदि पर्वोत्सवों पर भी अवकाश रहता था।

यूं तो नित्यानन्द जी अपनी पाठशाला के सभी गुरुओं से प्रभावित थे, परंतु व्याकरण आयुर्वेद और मीमांसा के आचार्यों से वे विशेष रूप से प्रभावित थे। ज्योतिष एक विषय के रूप में पढ़ना अवश्य पड़ता था, परंतु इसमें उनकी विशेष रुचि नहीं थी। पाठशाला में जिन ग्रन्थों में उन्होंने विशेष रुचि ली वे थे— सूक्ष्म व्याकरण संहिता, अमरकोश, लघुसिद्धान्त कौमुदी, पदक्रम, रघुवंश, सांख्य चन्द्रिका, कारकावली, अष्टांग योग, निरुक्त, वेदान्त परिभाषा, लीलावती, रणबीर व्रत रत्नाकर, मंत्र महोदधि, व्याकरण मंजूषा, प्रदीप भाष्य, ब्राह्मण भाष्य, श्रीमद् भागवत पुराण, न्याय लीलावती, न्याय कुसुमावली, बोधाधिकार, न्याय कुतूहल, सूर्य सिद्धान्त, इतिहास ग्रन्थ, ब्रह्मानन्द तथा रणबीर दण्ड संहिता आदि। वार्षिक परीक्षा रामनवमी के उपरांत होती जो लिखित और मौखिक दोनों रूपों में हुआ करती थी।

पाठशाला में उन्होंने पंचम स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की और प्राज्ञ की कक्षा में प्रवेश लिया। अपनी कक्षा में वे सब से तेज़ छात्र थे। प्राज्ञ कक्षा में ही वे अबाध गति से संस्कृत में वार्तालाप किया करते थे। उनकी भाषा व्याकरण सम्मत और परिमार्जित थी। उन दिनों जम्मू–कश्मीर राज्य में होने वाली सभी परिक्षाएं पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा ली जाती थीं। परीक्षा केन्द्र जम्मू में होता था। इन्होंने सोलह वर्ष की आयु में प्राज्ञ की परीक्षा अच्छे अंक लेकर उत्तीर्ण की और विशारद में प्रवेश लिया।

विशारद में प्रवेश लेने के उपरांत उन्होंने संस्कृत ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। साहित्य तथा आयुर्वेद के अतिरिक्त उन्होंने वेदान्त का भी गहन अध्ययन किया। कर्मकाण्ड में तो वे निष्णात थे ही।

अपने विद्यार्थी जीवन में विद्याध्ययन में रत रहते हुए ही उनका अनेक विद्वानों, पण्डितों, आचार्यों और तर्कशास्त्रियों से सम्पर्क हुआ। जब वे विशारद द्वितीय वर्ष में थे तो उनके सम्पर्क में एक नेपाली योगी आए। उसी योगी ने उन्हें मन्त्रयोग, हठयोग, लय योग और राज योग के विषय में विस्तार से बतलाया। उसी से उन्होंने दस यमों, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धैर्य, मिताहार तथा शौच और दस नियमों यथा तप, संतोष, अस्तेय, दान, ईशोपासना, सिद्धान्त श्रवण, लज्जा, बुद्धि, जप और व्रत का सविस्तार विवरण बतलाया। उसी ने उन्हें सिद्ध स्वास्तिक, पद्म, भद्रादि तैंतीस सिद्धिदायक आसनों की जानकारी दी। योग की ओर पहले ही लगाव होने के कारण वे इस योगी की ओर अधिक आकृष्ट हुए।

उसी ने कुम्भक, रेचक और पूरक तीन प्रकार के प्राणायाम भी बतलाए और इनका महत्व भी समझाया।

योगी ने नित्यानन्द जी को यह ज्ञान भी दिया कि साधक प्राणायाम से प्राणशक्ति पर विजय प्राप्त कर लेता है और प्रत्याहार से मन को निरुद्ध कर लेता है तो उन्होंने योगाभ्यास करने का मन में निश्चय कर लिया। योगग्रन्थों से उन्होंने जाना था कि–

प्रणवं धनु शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्षमुच्यते।
अप्रमत्तेन बोद्धव्यम् शरवत्स्तन्मयो भवेत्।।

योगी नेपाली उन्हें योग के विषय में संक्षिप्त जानकारी देकर अमरनाथ यात्रा के लिए चला गया, परंतु उसके प्रभाव से वे मुक्त न हो सके। उन्होंने पुस्तकालय में पतंजलि ऋषि के योगदर्शन का अध्ययन किया। विभिन्न योग–विद्या से सम्बन्धित ग्रन्थ पढ़े। इन ग्रन्थों में उन्होंने धारणा, ध्यान और समाधि के विषय में विस्तारपूर्वक पढ़ा। यद्यपि उन्होंने इन्द्रिय, मन और प्राण–निग्रह के विषय में अध्ययन तो अवश्य किया, परंतु गुरु के अभाव के कारण सफलता से वंचित ही रहे। योगशास्त्र के ग्रन्थों में उन्होंने अणिमा, महिमा, गरिमा, लधिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य ईशित्व और वशित्वादि आठ सिद्धियों तथा नव–निधियों के विषय में पढ़ा अवश्य, परंतु उस समय कोई श्रेष्ठ मार्गदर्शक गुरु न मिल सका। ज्यों–ज्यों वे योगग्रन्थों में उतरते चले गये, त्यों–त्यों संसार, सांसारिक सम्बन्धों और मोहाहंकार आदि से ऊपर उठते चले गए। सांसारिक प्रलोभनों से उनका मन विरक्त होने लगा। उन्होंने अपने मन में योगी बनने का दृढ़ निश्चय कर लिया और उपयुक्त गुरु की तलाश में भटकने लगे, परंतु उन्हें जम्मू–क्षेत्र अथवा इसके आस–पास कोई दक्ष साधक न मिला जो उन्हें योगविद्या में दीक्षित करता। इन्हीं दिनों वे अपने पिता से मिलने और अपने संकल्प से अवगत करवाने के लिए अपने घर कल्लर आए। घर पहुंचने पर उनके पिता चन्द्रमौलि जी ने उन्हें बताया कि उन्होंने ''जाड़'' गाँव में बड़कुलिये ब्राह्मणों के परिवार में उनकी सगाई कर उनका रिश्ता पक्का कर लिया है।

नित्यानन्द जी पिता की बात सुनकर अवाक् रह गए। कुछ देर मौन रहने के उपरांत उन्होंने साहस बटोर कर अपने पिता से कहा– ''पिता जी! मैंने तो योग साधना को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है और आजीवन अविवाहित रहने और गृह परित्याग का संकल्प ले लिया है। अत: आप मेरी प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में लड़की के माता–पिता को सूचित कर दें ताकि वे अपनी कन्या के लिए योग्य वर की तलाश कर सकें।'' अब स्तब्ध रह जाने की बारी पण्डित चन्द्रमौलि जी की थी। कुछ क्षण वे अपलक पुत्र को निहारते रहे फिर अपने आप को नियंत्रित कर बड़े संयमित स्वर में बोले– ''पुत्र नित्तू! मैंने तो तुम से बड़ी–बड़ी आशाएं लगा रखी थीं। पन्द्रह वर्ष पूर्व तुम्हारी माता का देहावसान हो जाने पर मैंने इसी आशा के साथ अपने दुर्भाग्य से सन्धि कर ली थी कि कुछ ही दिनों की बात है। दु:ख रूपी अन्धकार के बादल छंट जाएंगें और तुम्हारा विवाह हो जाने पर घर फिर महक उठेगा। पुत्र यदि तुम ब्रह्मचारी रहोगे तो हमारा वंश ही नष्ट हो जाएगा। हमारे पितरों की पिण्डोदक क्रिया करने वाला कोई नहीं होगा। तुम भी पितृऋण से उऋण नहीं हो सकोगे। अत: यह बाल हठ छोड़ दो। मेरा भी कुछ पितृ अधिकार है तुम पर। हमारे कुल की यह परम्परा रही है कि वाग्दान देकर वापस नहीं लिया जाता। यदि मैं ऐसा करूंगा तो जगहंसाई होगी। मैं वंश और यजमानों और सम्बन्धी जनों को मुंह दिखलाने योग्य न रह जाऊंगा। क्या तुम्हारा पिता शेष उम्र तिरस्कृत और अपमानित होकर गुज़ारेगा?''

पिता को भाव विह्वल और विचलित देख नित्यानन्द बड़े धैर्य से बोले, ''पिता जी! मैं ऐसी स्थिति ही उत्पन्न नहीं होने दूंगा जिससे आपको तिरस्कृत और अपमानित होना पड़े। हाँ, यह मेरा अटल निर्णय है कि मैं पाणिग्रहण नहीं करूंगा और अपने वचन पर अडिग रहूंगा।'' उस दिन चन्द्रमौलि जी ने नित्यानन्द के बहुत अनुनय–विनय करने पर भी रात्रि को भोजन ग्रहण नहीं किया और विचलित होकर बहुत देर तक इधर–उधर टहलते रहे।

अगले दिन रक्षाबन्धन था। नित्यानन्द जी नैत्यिक क्रियाओं से निवृत्त हो स्नान–ध्यान के उपरांत सीधे ''जाड़'' गाँव में उसी घर चले गए जहां पिता ने उनकी सगाई की थी। घर के आँगन में खड़े होकर उन्होंने लड़की को आवाज़ दी तो वह बाहर निकल आई। उन्हें देख लज्जावश वह ज्यौं ही भीतर जाने लगी तो नित्यानन्द जी ने विनम्र भाव से कहा– ''बहन आज तुम्हारा भाई तुम्हारे घर आया है, तुम उसकी

कलाई को सूना रखोगी?उसे राखी नहीं बाँधोगी?'' आवाज़ सुनकर लड़की के माता-पिता भी घर से बाहर निकल आए। उन्होंने उन दोनों को प्रणाम किया और अपने मन्तव्य से अवगत करवा दिया। लड़की के पिता का क्रोधित होना स्वाभाविक ही था। वह क्रोधित होकर बोला, ''मेरी बेटी में तुमने ऐसा कौन-सा दोष देखा है जिसके कारण तुम उसे ठुकरा रहे हो?तुम जानते हो कि लड़की के पिता की क्या दशा होती है?हम कहीं मुँह दिखाने के योग्य नहीं रह जाएंगे। हमारी जगहंसाई होगी। हम पर कुछ तो दया करो। विद्वान् हो, इतने निष्ठुर न बनो।''

नित्यानन्द लड़की के माता-पिता की मनोदशा से द्रवित अवश्य हुए और उन्हें समझाया भी। उन्होंने कहा कि वे आजीवन ब्रह्मचारी रहने का संकल्प कर चुके हैं। वे उनसे सम्बन्ध तोड़ने नहीं अपितु सम्बन्ध को सुदृढ़ करने आए हैं। वह लड़की से राखी बन्धवा कर उसे भाई-बहन के पावन रिश्ते में बाँध रहे हैं और अपने इस सम्बन्ध का वे निर्वाह करेंगे। बहुत समझाने-बुझाने पर लड़की के माता-पिता को उन्होंने मना ही लिया। लड़की से राखी बन्धवा कर सीधे अपने घर आए और अपने पिता को बताया- ''पिता जी! मैं लड़की से राखी बन्धवा कर आया हूँ। मैं जाड़ गया हुआ था। लड़की को बहन बना लिया है। आज से संसार की हर नारी मेरी माता या भगिनी है। इससे अलग मेरा किसी नारी से अन्य कोई सम्बन्ध नहीं।''

बेटे की बात सुनकर वृद्ध पिता भावुक हो उठे। उनके नयन सजल हो गए और फिर अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। तब नित्यानन्द जी ने पिता से करबद्ध हो कहा- ''पिता जी, मैं आपकी अन्तर्पीड़ा को भली-भांति समझता हूँ। मैं आपको वचन देता हूँ कि मेरे कारण कुल को कोई कलंक नहीं लगेगा। मुझ से ऐसे किसी कार्य की शंका न करें जिससे आपको लज्जित होना पड़े। मैं आपके नाम के साथ ही कुल की कीर्ति और यश को अमर कर दूंगा। वृद्ध पिता चाहते हुए भी कुछ कह न सके। वाणी कुंठित हो गई। भरे मन से उन्होंने पिता के चरण स्पर्श किये। पुस्तकों की गठरी उठाई और जम्मू की ओर प्रस्थान कर दिया।

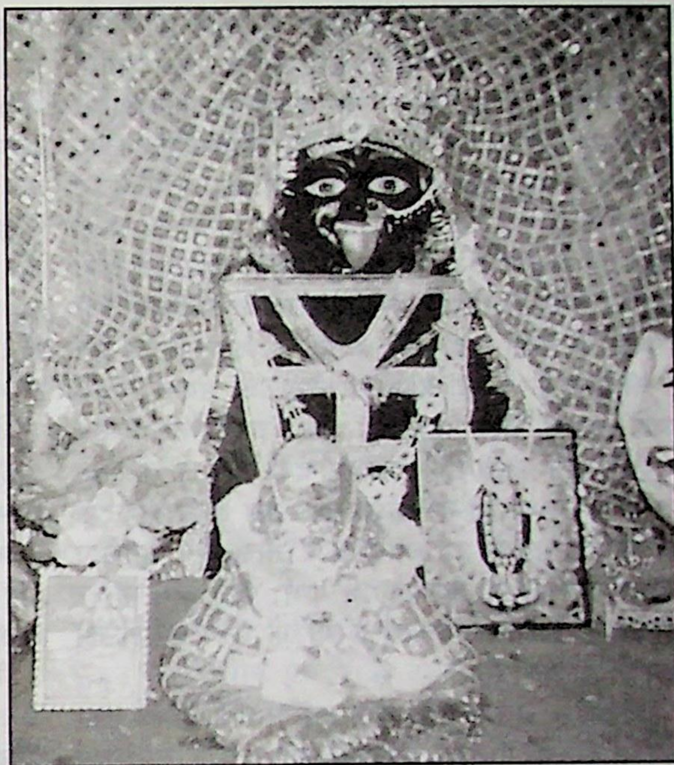
विशारद की परीक्षा आरम्भ होने में कुछ ही दिन रह गए थे। इनके सहपाठियों को पूर्ण विश्वास था कि वे इस कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करेंगे। इनके गुरुजनों को भी उनसे बड़ी आशाएं थीं। पाठशाला के प्रधानाचार्य भी उनकी प्रतिभा से विशेष प्रभावित थे। पाठशाला में अन्य कोई भी छात्र उनका प्रतिस्पर्धी नहीं था। गंगाधर जी के वह केवल एक ऐसे शिष्य थे जो साहित्यिक ग्रन्थों का अनुशीलन गम्भीरता से किया करते थे। ग्रन्थ की साहित्यिक आलोचना तथा मूल्यांकन करने में वे दक्ष थे। पण्डित गंगाधर जी के प्रति उनके हृदय में विशेष सम्मान तथा श्रद्धा थी। उनके बहनोई लक्ष्मणदत्त जी भी उसी पाठशाला में अध्यापन कार्य करते थे। उन्हें यह निश्चय था कि उनका साला एक दिन प्रकाण्ड पण्डित होकर यहां की मुख्य- पीठिका अर्थात् प्रधानाचार्य की कुर्सी को सुशोभित करेगा, किंतु यह जानकर कि उन्होंने तो अपनी सगाई तोड़ दी है तो वह बड़े क्षुब्ध हुए। उन्होंने उन्हें भविष्य में ऐसी किसी भी ग़लती की पुनरावृत्ति न करने का अनुरोध किया। उनकी बहन को जब इस बात की सूचना मिली तो वह भी स्तब्ध रह गई। वह अपने भाई का सम्बन्ध जम्मू पुरानी मण्डी में एक धनाढ्य परिवार से जोड़ना चाहती थी। उन्होंने भी नित्यानन्द को बहुत समझाया-बुझाया परंतु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। नित्यानन्द जी ने स्पष्ट शब्दों में अपने बहन-बहनोई से कह दिया कि वे आजीवन ब्रह्मचारी रहेंगे और योग-साधना ही उनका लक्ष्य है। इनके अन्य गुरुजनों ने इन्हें समझाने-बुझाने के अनेकों प्रयास किये। इन्हें कई सुन्दर बालाएं दिखाई, परंतु उन्होंने हर लड़की को ''बहन'' शब्द से ही सम्बोधित किया। ज्यौं-ज्यौं इन पर गृहस्थ जीवन बिताने-अपनाने का दबाव हर ओर से बढ़ने लगा, त्यौं-त्यौं इनके मन में जम्मू से भी पलायन करने की इच्छा बलवती होती गई। अध्ययन से भी उनका मन उचटने लगा।

अन्ततः एक दिन उन्होंने जम्मू छोड़ देने का दृढ़-संकल्प कर ही लिया। अपनी पुस्तकों की गठरी बाँधी और रेल पर सवार होकर लाहौर की ओर पलायन कर गए और सनातन धर्म महाविद्यालय में प्रवेश ले लिया। योगियों को तलाशते वे लाहौर के हर एक मन्दिर में गए और अन्ततः उनकी भेंट कपूरथला के एक योगी से हो ही गई, जिसने उनकी अनुनय-विनय पर उन्हें योग में दीक्षित करने की स्वीकृति दे दी।

क्रमशः

मन्दिर माता महाकाली जसरोटा

–केवल कृष्ण 'शाकिर'



प्राचीन काल से ही सारा जम्मू क्षेत्र साधु संतों तथा महात्माओं की तपस्या स्थली के रूप में जाना जाता है। जहां स्थान–स्थान पर हमें देवी–देवताओं के मन्दिर तथा तीर्थ स्थान देखने को मिलते हैं। इस क्षेत्र में शिव तथा शक्ति के अनगिनत मन्दिर हैं, जहां श्रद्धालु श्रद्धापूर्वक पूजा अर्चना करके आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करते हैं। सभी मन्दिरों तथा तीर्थ स्थानों के साथ कई धार्मिक कथाएँ जुड़ी हुई हैं।

इस क्षेत्र के पहाड़ी राजाओं के शासन काल में जितने भी दुर्गों का निमार्ण हुआ और उनमें जो मन्दिर बनवाये गये; उनमें अधिकतर माता महाकाली की मूर्ति की ही स्थापना की गई है। युद्ध में जाने से पहले राजा तथा सैनिक विधि पूर्वक माता महाकाली की पूजा करते और युद्ध में विजय प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते थे; क्योंकि माता महाकाली ही एक मात्र शक्ति है, जिस ने युद्ध में बड़े–बड़े शक्ति शाली राक्षसों का संहार करके देवताओं तक को विजय दिलाई थी। माता महाकाली साहस तथा वीरता की प्रतीक तथा युद्ध में अपने भक्तों का साथ देती है। धार्मिक ग्रंथों के अनुसार राक्षसों से भयभीत होने पर ब्रह्माजी तथा विष्णु भगवान् भी माता महाकाली की कृपा से ही भयमुक्त हुए थे। महाकाली की आराधना करने से मुर्दा दिलों में भी नया जोश पैदा हो जाता है। ऐसा विश्वास है कि हर संकट की घड़ी में माता महाकाली ने जम्मू वासियों की रक्षा की है। जम्मू क्षेत्र में निर्मित माता महाकाली के मन्दिरों में जसरोटा का मन्दिर भी प्राचीन मन्दिरों में गिना जाता है।

जसरोटा को 22 पहाड़ी राज्यों में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। महाराजा गुलाब सिंह ने 1846 ई. में जब जम्मू–कश्मीर राज्य की स्थापना की तब जसरोटा को अपने राज्य में शामिल कर लिया और 1922 तक उसे ज़िले का दर्जा प्राप्त था, परंतु महाराजा प्रताप सिंह ने जसरोटा के स्थान पर कठुआ को ज़िले का दर्जा देकर जसरोटा के महत्व को समाप्त कर दिया और वह ज़िला कठुआ का एक छोटा सा गांव बन कर रह गया। यहां पर पहाड़ी पर माता महाकाली का प्राचीन मन्दिर है।

क्योंकि महाकाल भगवान् शिव का नाम है; इसलिए उनकी पत्नी को महाकाली भी कहा गया है। माता पार्वती का बचपन का नाम भी काली ही था। वह संहार की देवी है जिसका एक और प्रसिद्ध नाम चामुंडा भी है। माता ने चण्ड–मुण्ड नाम के दो राक्षसों का वध किया था। इसलिए वह चामुंडा के नाम से भी जानी जाती हैं। वह अपने भक्तों को रोग, शोक, दु:ख तथा भय से मुक्त करती है।

जम्मू–पठानकोट राजमार्ग पर कठुआ से कुछ किलोमीटर पहले राजबाग बस स्टॉप पर उतरकर मैटाडोर द्वारा श्रद्धालु जसरोटा पहुंचते हैं। पर लगभग 125 सीढ़ियां चढ़ने के बाद श्रद्धालु मन्दिर के सुन्दर तथा स्वच्छ परिसर में प्रवेश करते हैं। यहां प्रवेश करते ही सब से पहले दाईं ओर एक छोटे से चबूतरे

पर स्वामी सुब्रमण्यम् जी की मूर्ति के दर्शन होते हैं। उनके साथ महंत नारायण दास गिरी जी की मूर्ति है, जिन के सामने शिव लिंग की स्थापना की गई है। इन दोनों मूर्तियों के मध्य एक विशाल वट वृक्ष है। मन्दिर पुजारी कुलदीप शर्मा के अनुसार यह वट वृक्ष स्वामी सुब्रमण्यम् के चरणों से उग कर बाहर आया है। दोनों महात्माओं ने इसी पवित्र स्थान पर समाधि ग्रहण की थी। इस पहाड़ी से जसरोटा छावनी का सारा दृश्य दिखाई देता है। इस ओर उचित ध्यान न देने और जसरोटा राज्य की समाप्ति के कारण जसरोटा नगर, जसरोटा छावनी तथा जसरोटा का दुर्ग उजड़ कर खंडरात में तब्दील हो गये। मन्दिर के आस–पास दुर्ग की दीवारों के चिन्ह आज भी देखे जा सकते हैं। ये दीवारें पत्थरों की बनी हुई हैं। इन दीवारों की चौड़ाई डेढ़ मीटर के करीब है। उचित देखभाल न होने के कारण दुर्ग तथा मन्दिर के आस–पास झाड़ियाँ तथा जंगली पेड़–पौधे उग आए और सारा क्षेत्र सुनसान बियाबान जंगल में तबदील हो गया; परंतु अब मन्दिर की देख–रेख तथा विकास कार्यों के लिए कमेटी का गठन किया गया है।

इस समय यहां तीन मन्दिर हैं। पहले तथा बड़े मन्दिर में माता महाकाली की प्राचीन मूर्ति का पुनरूद्धार कर दिया गया है। इसकी दाई ओर गणेश जी और बाई ओर माँ दुर्गा की मूर्ति है। तीनों मूर्तियों को सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणों से सजाया गया है। दूसरे मन्दिर में शिव लिंग की स्थापना की गई है और तीसरा मन्दिर धर्मराज जी का है। यूं तो रविवार तथा मंगलवार को बड़ी संख्या में माता के भक्त यहां आते हैं, परंतु नवरात्रों और विशेष रूप से चैत्र महीने के नवरात्रों में तो यहां की रौनक देखते ही बनती है। उन दिनों यहां यात्रियों के रहने तथा खाने–पीने का पूरा प्रबंध किया जाता है।

स्वामी सुब्रमण्यम् जी ने इस पवित्र स्थान के पुनः विकास के लिए बहुत काम किया। उनसे पहले स्वामी बुद्ध नाथ जी जसरोटा के मन्दिरों को देखने की इच्छा से यहां आये थे। उन दिनों जसरोटा पूर्ण रूप से उजड़ चुका था। महल गिर रहे थे और वहां बने मन्दिरों की मूर्तियों को निकाल कर सुरक्षित स्थानों पर स्थापित किया जा रहा था। जो मन्दिर ठीक थे उन की पूजा कर पुजारी छावनी में लौट आते थे। स्थानीय लोग स्वामी बुद्धनाथ जी के निर्देशन में महाकाली मन्दिर को पहाड़ी पर ले गये। वहां घास तथा झाड़ियों में एक चबूतरा था मन्दिर की सभी दीवारें गिर चुकी थीं और माता महाकाली की मूर्ति पत्थरों में दब गई थी। लोगों की सहायता से मूर्ति को निकाल कर साफ़ किया गया और उचित स्थान पर रख कर श्रद्धालु माता की पूजा करने लगे। कुछ समय के बाद स्वामी बुद्धनाथ जी जसरोटा से चले गये। कुछ समय के बाद उस मूर्ति को वर्तमान मन्दिर में स्थापित किया गया।

सुब्रमण्यम् स्वामी जी यहां लम्बे समय तक रहे। उन्होंने यहां छोटी सी कुटिया भी बनाई। स्थानीय लोग स्वामी जी के पास आकर भजन-कीर्तन किया करते थे। स्वामी जी जसरोटा के प्राचीन इतिहास और यहां के राजाओं की वीरता की कहानियां सुनकर बड़े प्रसन्न होते थे। आम जनता तथा राज परिवार के सदस्य उन दिनों कुलदेवी महाकाली के दर्शन के लिए यहां आते थे और कोई भी शुभ कार्य करने से पहले माता के दरबार में उपस्थित होकर कार्य की सफलता के लिए प्रार्थना करते थे।

एक समय था जब जसरोटा सभी पहाड़ी राज्यों में हर लिहाज़ से समृद्ध तथा खुशहाल था। यहां के मन्दिरों के कलश दूर–दूर से दिखाई देते थे। लोग धार्मिक विचारों के थे और सुखमय जीवन व्यतीत करते थे परंतु देखते ही देखते उज्झ नदी के तट पर बसा यह सुन्दर नगर वीरान हो गया। राज परिवार की शान समाप्त हो गई। गलियां तथा बाज़ार बेरौनक हो गये। तालाब सूख गये और लोग जसरोटा से पलायन कर दूसरे स्थानों पर चले गये।

आज जसरोटा में पहले जैसी रौनक तो नहीं परंतु माता महाकाली के मन्दिर की शोभा दिन प्रति–दिन बढ़ती जा रही है और यहां आने वाले यात्रियों की संख्या में भी वृद्धि हो रही है। आवश्यकता इस बात की है इस क्षेत्र के जन प्रतिनिधि, प्रशासनिक अधिकारी स्थानीय लोग, स्वयं सेवी संस्थाएं तथा धार्मिक संगठन मिलकर यत्न करें ताकि जसरोटा अपनी खोई हुई शान को पुनः प्राप्त कर सके और माता महाकाली के आशीर्वाद से सभी लोग खुशहाल तथा समृद्ध हों।

प्रकृति - पुरुष

युगों पहले की बात है जब माता पार्वती के मन में यह शंका उत्पन्न हुई कि शंकर जी ने अपने गले में मुण्डमाला क्यों और कब धारण की है तो शंकर जी ने उत्तर दिया—हे पार्वती! जितनी बार तुम्हारा जन्म हुआ उतने ही मुण्ड मैंने धारण कर लिए। इस पर पार्वती जी बोली कि मेरा शरीर नाशवान है, मृत्यु को प्राप्त होता है परंतु आप अमर हैं। इसका कारण बताने की कृपा करें। भगवान् शिव ने रहस्यमयी मुस्कान भरकर कहा कि यह तो अमरकथा के कारण है।

यह सुनकर पार्वती के मन में भी अमरत्व प्राप्त कर लेने की इच्छा जागृत हुई और उन्होंने अमर कथा सुनाने का आग्रह किया। कितने ही वर्षों तक शिवजी इसको टालने का प्रयत्न करते रहे, परंतु पार्वती के लगातार हठ के कारण उन्हें अमरकथा को सुनाने के लिए बाध्य होना पड़ा। परंतु समस्या यह थी कि कोई अन्य जीव उस कथा को ना सुने। अत: किसी एकान्त व निर्जन स्थान की खोज करते हुए श्री शंकर जी, पार्वती सहित, इन पर्वत– मालाओं में पहुंच गए।

प्राचीन–कथा में उल्लेख है कि इस 'अमर कथा' को सुनाने से पहले भगवान् शंकर यह सुनिश्चित कर लेना चाहते थे कि कथा निर्विघ्न पूरी की जा सके और इसमें कोई भी बाधा न आए तथा पार्वती के अतिरिक्त अन्य कोई प्राणी उसे न सुन सके। उचित एवं निर्जन–स्थान की तलाश करते हुए वे सर्वप्रथम 'पहलगाम' पहुंचे, जहां उन्होंने अपने नन्दी (बैल) का परित्याग किया। वास्तव में इस स्थान का प्राचीन नाम बैलगांव था जो कालान्तर में बिगड़कर तथा क्षेत्रीय भाषा में उच्चारण से पहलगाम हो गया है।

तत्पश्चात् 'चन्दनबाड़ी' में भगवान् शिव ने अपनी जटा (केशों) से चन्द्रमा को मुक्त किया। 'शेषनाग' नामक झील पर पहुंच कर उन्होंने अपने गले से सर्पो की मालाओं को भी उतार दिया। सम्भवत: इसी कथा के आधारभूत शेषनाग पर्वत पर नागों की आकृतियाँ विद्यमान हैं। हाथी के सिर व सूड़ वाले प्रिय पुत्र, श्री गणेश जी, को भी उन्होंने 'महागुनस पर्वत' पर छोड़ देने का निश्चय किया। इस स्थान का प्राचीन एवं शुद्ध उच्चारण महागणेश था, जो धीरे–धीरे सम्भवत: कश्मीरी भाषा के प्रभाव से महागणेश से महागुनस हो गया। इसके पश्चात्



भगवान् सदाशिव ने 'पंचतरनी' नामक स्थान पर पहुंच कर पंच–तत्वों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश) का परित्याग कर दिया। भगवान् शिव इन्हीं पंच–तत्वों के स्वामी माने जाते हैं जिनको उन्होंने श्री अमरनाथ गुफ़ा में प्रवेश से पहले ही छोड़ दिया था। इसके पश्चात् ऐसी मान्यता है कि शिव–पार्वती ने इस पर्वत श्रृंखला में ताण्डव–नृत्य भी किया था। ताण्डव–नृत्य वास्तव में सृष्टि के त्याग का सूचक माना गया है।

सब कुछ त्याग कर अंत में भगवान् शिव ने इसी गुफा में, पार्वती सहित प्रवेश किया और मृगछाला बिछाकर पार्वती को अमरत्व का रहस्य सुनाने के लिए ध्यानमग्न होकर बैठ गए परंतु इससे पहले उन्होंने कालाग्नि नामक रूद्र को प्रकट किया और आज्ञा दी 'चहुँ ओर ऐसी प्रचण्ड अग्नि प्रकट करो जिससे समस्त जीवधारी जल कर भस्म हो जाएं'। कालाग्नि ने ऐसा ही किया। अब संतुष्ट होकर शिव जी ने अमरकथा की कहानी सुनानी शुरू की परंतु उनकी मृगछाला के नीचे तोते का एक अण्डा फिर भी बच गया था।

इस कथा का नाम अमरकथा इसलिए है कि इसे श्रवण करने से शिवधाम की प्राप्ति होती है। यह वह परम पवित्र कथा है जिसके सुनने से सुनने वालों को अमरपद की प्राप्ति होती है तथा वह अमर हो जाते हैं। यह कथा श्री शंकर भगवान् ने इसी गुफ़ा में (श्री अमरनाथ जी की गुफा में) भगवती पार्वती को सुनाई थी। इस कथा को सुनकर ही श्री शुकदेव अमर हो गये थे। जब भगवान् शंकर यह कथा भगवती पार्वती को सुना रहे थे तो वहां एक तोते का बच्चा भी इस परम पवित्र कथा को सुन रहा था और इसे सुनकर फिर उस तोते के बच्चे ने श्री शुकदेव स्वरूप को पाया था। 'शुक' संस्कृत में तोते को कहते हैं और इसी कारण बाद में वह मुनि 'शुकदेव, के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुए। यह कथा भगवती पार्वती तथा भगवान् शंकर का संवाद है। यह परम–पवित्र कथा लोक व परलोक का सुख देने वाली है। भगवान शंकर और जगत्माता के इस संवाद का वर्णन भृगु–संहिता, नीलमत–पुराण, तीर्थ संग्रह आदि ग्रन्थों में पाया जाता है। हम आपके सम्मुख यह परम पवित्र कथा विस्तार–पूर्वक रखने जा रहे हैं।

एक बार देव–ऋषि नारद कैलाश पर्वत पर भगवान् श्री शंकर के दर्शन करने पधारे। भगवान् श्री शंकर उस समय वन विहार के लिए गये हुए थे और माता पार्वती यहां पर विराजमान थीं। श्री पार्वती जी ने देव–ऋषि नारद को प्रणाम किया और सादर आसन देकर बोली देव–ऋषि! आपने यहां पधार कर हम पर बड़ी कृपा की। आप अपने आने का कारण बताइए।

देव–ऋषि नारद बोले– ''देवी! मेरा एक प्रश्न है, उसका उत्तर चाहता हूँ।''

श्री पार्वतीजी ने कहा– ''कहिए?''

नारद बोले–''देवी! मुझे इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि भगवान् श्री शंकर, जोकि हम दोनों से बड़े हैं, उनके गले में रूण्डमाला क्यों है?

श्री पार्वतीजी बोली–''इसका कारण मैं नहीं जानती।''

नारद जी ने कहा–''आप यथासमय इसका कारण भगवान् श्री शंकर से पूछियेगा।''

इतना कहकर देव–ऋषि नारद वहां से चले गये और उनके जाने के थोड़ी देर बाद भगवान शंकर आ गये और उनके आने पर भगवती पार्वती ने वही प्रश्न उनसे किया।

भगवान् श्री शंकर बोले–''हे पार्वती! तुम यह प्रश्न न पूछो।''

लेकिन श्री पार्वतीजी ने भगवान् श्री शंकर की बात नहीं मानी और उनके रूण्डमाला धारण करने का कारण जानने के लिए हठ करने लगीं। इस पर भगवान् श्री शंकर ने कहा–''पार्वती! जितने मुण्ड तुमको इस मुण्डमाला में दिखाई दे रहे हैं यह तुम्हारे ही सिर हैं अर्थात् जितने जन्म तुमने धारण किए हैं उतने ही मुण्ड मैंने धारण किए हैं।''

इस पर पार्वती जी ने प्रश्न किया–''प्रभु! मेरी तो मृत्यु होती है और आपकी नहीं होती इसका कारण क्या है?''

भगवान् श्री शंकर बोले ''यह सब अमर कथा के कारण है?''

पार्वती बोली ''तो फिर मुझे भी यह अमर कथा सुना दीजिए ना।''

इस पर श्री शंकर जी ने आसन लगाया और कालाग्नि रूद्र नामक एक गण प्रकट किया और उसे

आज्ञा दी–''चहुँ ओर एक ऐसी अग्नि प्रकट करो जिसमें जलकर समस्त जीवधारी मर जावें।''

भगवान् शंकर की आज्ञा पाकर कालाग्नि ने ऐसा ही किया और अदृश्य हो गया। जिस आसन पर भगवान् श्री शंकर बैठे थे उसके नीचे एक तोते का अण्डा पहले से ही था जो कालाग्नि को दिखाई नहीं दिया। भगवान् शंकर ने माता पार्वती से कहा कि आप कथा सुनते समय हुंकारा लगाते रहना। इसके पश्चात् भगवान् श्री शंकर नेत्र मूंद कर, एकाग्रचित हो पार्वती जी को अमर कथा सुनाने लगे और पार्वती जी उनके हर वाक्य पर हुंकारा भरने लगी। धीरे–धीरे पार्वती जी को नींद आने लगी। उसी समय उस अण्डे में से जीव प्रकट हुआ। श्री पार्वती जी तब तक हुंकारा देते–देते सो चुकी थी। अब उनके स्थान पर तोता हुंकारा देने लगा। जब भगवान् शंकर ने अमर कथा समाप्त की तो उसी समय पार्वतीजी की आंखे भी खुली। भगवान् श्री शंकर ने उनसे पूछा कि क्या – उन्होंने अमर कथा सुनी है?माता पार्वती ने उत्तर दिया कि उन्होंने अमर कथा नहीं सुनी। इस पर भगवान् श्री शंकर ने पूछा– ''तब हुंकारा कौन देता था?''



पार्वती जी बोली 'मुझे नहीं मालूम।'

तब भगवान् श्री शंकर ने इधर–उधर देखा तो उनको एक तोता दिखाई दिया जो कि उनके देखते ही देखते उड़ गया। भगवान् शंकर उठकर तोते के पीछे दौड़े। वह तोता उड़ता–उड़ता तीनों लोको में गया लेकिन उसको कहीं जगह नहीं मिली। श्री व्यासदेव की पत्नी अपने घर के द्वार पर बैठी जम्हाई ले रही थी, वह तोता उनके मुंह के रास्ते पेट में चला गया। भगवान् श्री शंकर ने कहा– 'व्यास जी मेरा चोर आपके घर में है।'

महर्षि व्यास बोले– 'प्रभु! हमारे घर में तो कोई चोर नहीं है।'

भगवान् श्री शंकर के कहने पर महर्षि व्यास जी ने अपनी पत्नी से पूछा। उसने उत्तर दिया– 'ऐसा जान पड़ता है जैसे कि मेरे पेट में कोई पक्षी गया है।' महर्षि व्यास जी ने यह बात भगवान श्री शंकर से कही और साथ ही कहा– 'आपकी जैसी इच्छा हो वैसा कर सकते हैं। लेकिन यह तो आप जानते ही है कि स्त्री को मारना पाप है।'

श्री वेदव्यास की यह बात सुनकर भगवान् शंकर लौट गये। यह तोता कई वर्षो तक ऋषि–पत्नी के पेट में रहा। लेकिन जब ऋषि–पत्नी के पेट का दर्द अधिक बढ़ता गया तो श्री वेदव्यास जी ब्रहमाजी और उसके पश्चात् श्री विष्णु के पास गये। फिर तीनों मिलकर भगवान श्री शंकर के पास गये। इसके पश्चात् चारों श्री वेदव्यास जी के घर पर आए और पक्षी की स्तुति करने लगे। पक्षी, जो भगवान् श्री शंकर जी से अमर कथा सुनकर चारों वेदों तथा अठारह पुराणों का ज्ञानी हो गया था कहने लगा– 'जब तक जगत् निर्मोही नहीं होगा, तब तक मैं मां के पेट से बाहर नहीं निकलूंगा।' इस पर भगवान् विष्णु ने अपनी माया से जगत को निर्मोही कर दिया। इस पर वह तोता बालक रूप लेकर मां के पेट से बाहर आ गया और उसका नाम शुकदेव हुआ। श्री शुकदेव अपने जन्म के साथ ही सबको प्रणाम करके जंगल की ओर चल दिये और फिर भगवान् विष्णु ने अपनी माया हटा दी और जगत पुनः मोहयुक्त हो गया। इस पर श्री वेदव्यास जी अपने पुत्र के लिए व्याकुल होकर श्री शुकदेव के पीछे जंगल में दौड़े और उनके पास पहुंचकर उनसे घर चलने के लिए कहा। श्री शुकदेव जी ने कहा– ''जगत् निर्मोही है। यहां न कोई किसी का पुत्र है और न कोई किसी का पिता।''

श्री वेदव्यास जी बोले– 'अब ऐसा नहीं है।' श्री शुकदेवजी ने ध्यान लगा कर देखा तो मालूम हुआ कि भगवान् श्री विष्णु ने उनके साथ छल किया है। इस

पर उन्होंने श्री वेदव्यास जी से कहा ''जब तक मैं गुरू धारण नहीं कर लूंगा वापिस घर नहीं जाऊंगा और गुरू धारण करने के बाद मैं घर आकर आपकी सेवा करूंगा''।

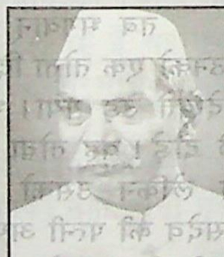
शुकदेव जी फिर इस संसार में गुरू की खोज में इधर-उधर घूमने लगे मगर अपने से बढ़कर ज्ञानी उनको कहीं पर नहीं मिला। इस पर वह श्री वेदव्यास जी की आज्ञा से महाराज जनक के पास गये परंतु महाराज जनक के पास कर्म, स्त्री व राजपाट के कारण उनको ग्लानि हुई। लेकिन राजा जनक ने जब उनका हाल देखा तो अपनी माया से उन्होंने सारे नगर को भस्म कर डाला, राजभवन भी भस्म होने लगा लेकिन राजभवन के जलने से महाराज जनक और पत्नी का चित्त चलायमान नहीं हुआ। किंतु श्री शुकदेव जी का चित्त व्याकुल होने लगा। शुकदेव जी को अमर कथा के सुनने तथा अमर हो जाने का अभिमान था। उनकी व्याकुलता को देखकर महाराज जनक बोले 'आप क्यों घबरा रहे हैं? आप तो अमर हैं। लेकिन हमारा शरीर अवश्य जलेगा' इस पर भी जब श्री शुकदेव जी की व्याकुलता दूर न हुई तो महाराज जनक ने अपनी माया से अग्नि को पुनः शांत कर दिया और प्रत्येक वस्तु पूर्ववत् हो गई। यह देखकर श्री शुकदेव जी ने महाराज जनक को अपना गुरू बना लिया और उनसे उपदेश लिया।

इसके बाद श्री शुकदेव जी नैमिषारण्य गये। वहां पर ऋषियों-महर्षियों ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। ऋषियों-महर्षियों ने उनसे अमर कथा सुनाने का आग्रह किया। श्री शुकदेव जी बोले इस कथा को सुनने वाले अमर हो जाते हैं। इसके पश्चात् उन्होंने कथा सुनानी आरम्भ की। कथा आरम्भ होने के साथ ही कैलाश-पर्वत, क्षीरसागर और ब्रह्मलोक हिलने लगे। ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा समस्त देवता उस स्थान पर पहुंचे जहां पर अमर कथा हो रही थी। भगवान् शंकर को स्मरण हुआ कि यदि इस कथा के सुनने वाले अमर हो गये तो पृथ्वी का संचालन बंद हो जायेगा और फिर देवताओं की प्रतिष्ठा में अंतर आ जायेगा। इसलिए भगवान् श्री शंकर क्रोध में भर आये और श्राप दिया कि जो इस कथा को सुनेगा वह अमर नहीं होगा। परंतु हां, वह शिव-लोक अवश्य प्राप्त करेगा।'

आत्मविश्वास

-आयुष दुबे

परीक्षाफल सुनाने प्रिंसीपल खड़े हुए। सभी विद्यार्थियों के नाम पढ़े जाने के बाद एक विद्यार्थी खड़ा हुआ और बोला- ''मेरा नाम नहीं बोला गया।'' अनुशासन प्रिय प्राचार्य ने कहा- ''तुम अनुत्तीर्ण हो।'' उस वर्ष वह बालक बहुत लम्बे समय तक मलेरिया ज्वर से पीड़ित रहा था किंतु अपनी सफलता पर उसे इतना विश्वास था कि वह बोल पड़ा- ''नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।'' ''ऐसा ही है'' प्राचार्य ने दृढ़तापूर्वक दुहराया।''



''नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।''

''मैं कहता हूँ बैठ जाओ और कुछ भी बोले तो जुर्माना होगा।''

''मैं उत्तीर्ण हूं इसमें संदेह नहीं।'' बालक बोला।

''पांच रूपये जुर्माना।''

''कुछ भी हो, मैं उत्तीर्ण हूं।''

''दस रूपये।''

बालक बोलता गया और प्राचार्य 5-5 रूपये बढ़ाते गये। नीलामी की बोली जैसा दण्ड बढ़ता हुआ 50 रूपये के लगभग हो गया। गुरु शिष्य के ***अनुशासन*** और ***आत्मविश्वास*** दोनों में होड़ लगी थी।

तभी लिपिक (क्लर्क) दौड़ा-दौड़ा प्राचार्य के पास गया और बालक को संकेत से समझा दिया। बालक बैठ गया। बाद में पता चला कि बालक ने सर्वोच्च अंक पाये थे। ***यह बालक था 'राजेन्द्र प्रसाद' जो आगे चलकर भारत का प्रथम राष्ट्रपति बना।***

स्वतन्त्रता का दुरुपयोग

—स्वामी रामस्वरूप योगाचार्य

अथर्ववेद मंत्र 18/41/1 के अनुसार किसी भी देश को सुदृढ़ एवं सुखमय बनाने में दो ही शक्तियों का हाथ होता है। पहली ऋषि दूसरा राजा अर्थात् राजनेता। मंत्र में कहा– ''भद्रम् इच्छन्तः'' अर्थात् कल्याण की इच्छा करते हुए ''ऋषयः तपः दीक्षाम् अग्रे उपनिषेदुः'' ऋषियों ने तप अर्थात् ब्रह्मचर्य, वेदाध्ययन आदि और ''दीक्षाम्'' अर्थात् नियम और व्रत की शिक्षा को प्रथम धारण किया ''ततः राष्ट्रम् बलम् च ओजः जातम्'' उसके पश्चात् राष्ट्रबल, सामर्थ्य और पराक्रम को सिद्ध करने में समर्थ हुआ। स्पष्ट है कि ऋषियों का तप, भक्ति आदि राष्ट्र की जनता के दुःखों का नाश करके सुख देते हुए सम्पूर्ण राष्ट्र के कल्याण के लिए होती है। उदाहरणार्थ–दशरथ राजा गुरु वसिष्ठ, जनक अपनी आचार्या गार्गी एवं ऋषि याज्ञवल्क्य, राजा हरिश्चन्द्र गुरु विश्वामित्र से विद्या एवं राजनीति आदि पर विचार–विमर्श करके ही राज्य का संचालन एवं प्रजा का पुत्रवत् पालन करते थे। ऋषिवर भी निःस्वार्थ यथा–शक्ति विद्या दान द्वारा राजा–महाराजाओं को वैदिक शिक्षा देकर प्रजा के हर सम्भव कल्याण के लिए राजाओं को प्रेरित करते तथा राष्ट्र के अन्दरूनी और बाहरी शत्रुओं के दमन के लिए नीतियाँ निर्धारित करते थे। महाभारत एवं वाल्मीकि रामायण से यह स्पष्ट होता है कि प्रजा के सुख के लिए वैदिक संस्कृति के ज्ञान/गुण को ग्रहण करके राजा और उसकी मंत्री परिषद् प्रजा की सुरक्षा, न्याय, धर्म स्थापना, धन वृद्धि एवं सुख–शांति की स्थापना निश्चित करते हैं। अन्यथा यजुर्वेद मंत्र 23/22 में कहा है कि यदि राजा न्याय से प्रजा की रक्षा न करे और प्रजा से केवल सम्पत्ति कर (Tax) आदि ही लेता रहे तो राज्य की प्रजा अत्यंत क्षीण हो जाती है। प्रजा सशक्त बाज़ के सामने एक छोटी–सी असहाय चिड़िया के समान निर्बल हो जाती है। अंत में राजा भी नष्ट हो जाता है। यही कारण है कि जहाँ वैदिक संस्कृति के आधार पर राम के पूर्वजों का राज्य पृथ्वी पर, मनु जो सृष्टि के प्रथम राजा हुए, उससे लेकर लव–कुश तक अर्थात् लाखों वर्ष तक स्थापित रहा है। वहीं आज एक प्रधानमंत्री अपना राज्य पाँच वर्ष भी पूर्ण करने में विफल सा हो जाता है। आज देश–विदेश में ऋषि–परपंरा, जिसमें वेदाध्ययन, यज्ञ एवं प्रत्येक विषय पर शिक्षा सुलभ है, वह वेद–विरोधी सन्तों एवं नेताओं ने नष्ट कर दी है। जिसके फलस्वरूप आज़ादी के बाद ही नहीं, आज़ादी के पहले से ही हमारे देश के अधिकतर राजनेता एवं नबाब माँस–मदिरा एवं वेश्याओं के नाच गान में मग्न प्रायः रहे और देश 800 वर्ष मुग़लों और 200 वर्ष अंग्रेज़ों का गुलाम रहा।



इतिहास के पन्ने गवाह हैं कि हमारे देश में यह वैदिक संस्कृति खण्डित हुई; जिसके कारण ही नेताओं एवं देशवासियों की चरित्रहीनता ने हम भारतवासियों को गुलाम बनाया था, गुलामी में रहकर चाय, डबलरोटी, माँस–मदिरा,

बीड़ी-सिगरेट, इनाम, ऊँचे-ऊँचे पदों का लोभ, विदेशी भाषा का आकर्षण, विदेशी पहनावे एवं विदेशी संस्कृति अपनाकर कहीं हमने- "गधा घर का रहा न घाट का" वाली कथा को तो चरितार्थ नहीं कर दिया? स्वतंत्रता प्राप्ति की कीमत में माताओं ने ज़ेवर, तथा बेटे कुर्बान किए, अमीरों ने धन व ग़रीबों ने खून बहाया, माँ-बहन व बेटियों की इज्ज़त पर कुठाराघात, परिवारों का कत्ले-आम, भुखमरी, मकान-दुकान, घर-बाहर सबकी बर्बादी हुई। आज़ादी के सुभाष, तिलक, भगतसिंह जैसे अनेक परवानों की रक्त-रंजित, भीषण आहुति देकर आज़ादी पाई है। स्वतन्त्रता रो-रोकर अथवा भीख माँगकर प्राप्त नहीं की गई है। अतः हम शहीदों के बहाए हुए लाल खून का अपमान लाल शराब, लाल माँस आदि भक्षण करते हुए बेकार करने का प्रलय न करें। सभी प्राणियों का रक्त लाल रंग का है। ख़ून की एक बूँद भी यदि बह जाए तो इन्सान को कितना दुःख होता है, परंतु हमारे आज़ादी के दीवानों ने अपने इस लाल रक्त को आज़ादी प्राप्त करने के लिए शरीरों से नदी-नालों के रूप में बहा कर हमें आज़ाद भारतवर्ष सौंपा था। आज इन्सानियत का सिर शर्म से झुक जाता है कि जब देखते हैं कि उसी लाल रक्त की सी शराब आज के राजनेता जामों में पीते हैं और जो आज़ादी के दीवानों के शरीर की बोटियाँ-बोटियाँ काटकर फेंक दी गई थी। आज पशुओं के माँस की बोटियों को स्वाद ले-लेकर खा-खाकर माँस और मदिरा के नशे में जनता की सुरक्षा, सुख एवं चैन को ताक पर रख दिया गया है। इस खून के रंग जैसी लाल मदिरा एवं माँस को खाने का नशा कई-कई जगह तो इतना बढ़ गया है कि निठारी जैसे काण्ड में तो राक्षस वृत्ति उत्पन्न हुई दिखाई स्पष्ट दे रही है जहाँ मानव का खून एवं माँस भी भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया गया है।

उत्पीड़ित, शोषित एवं अपमानित भारत भूमि के वीर जवानों ने स्वतन्त्रता आन्दोलन के महान् यज्ञ में परिवार का सुख, सम्पत्ति, जवानी के भोग इत्यादि सब कुछ ठुकराकर काल-कोठरियों में सड़कर काला पानी जैसे स्थानों में हड्डियाँ जलाकर, अंग्रेज़ों के चाबुक खाकर तथा हँसते-हँसते फाँसी के फन्दे पर झूलकर अंत में 15 अगस्त 1947 ई. की गुलामी का दुःखदायी जुआ उतारकर तथा भारत माँ को बेड़ियों से आज़ाद करके स्वतन्त्र भारतरूपी स्वर्णमयी अक्षर इतिहास को प्रदान किए थे। साथ ही ऋषियों-मुनियों साधु-सन्तों एवं राजऋषियों की पवित्र भूमि का एक भाग पृथक् करके पाकिस्तान के नाम से इतिहास के पन्नों में जोड़ने पर मजबूर होना पड़ा था।

आज बड़े दुःख एवं शर्म की बात है कि हमने आज़ादी को एक मज़ाक बनाकर रख दिया है। जैसे मुगल साम्राज्य में राजगद्दी के लिए परिवार के सदस्यों का भी वध एवं प्रजा को दुःख देने में राजा नहीं चूकते थे, कुछ वैसा ही व्यवहार प्रायः हमारी राजनीति में दिखाई सा दे रहा है। जहाँ वैदिक संस्कृति के ज्ञाता राजऋषि देशद्रोह, आतंक आदि उठने से पहले ही सर्प के मुँह के समान कुचल देते थे वहीं आज प्रथम तो राजनेता ऐसी देशद्रोही गतिविधियों को फलने-फूलने देते हैं और फिर जब पानी सिर से ऊपर गुज़र जाता है और प्रजा एक निर्बल चिड़िया की तरह असहाय हो जाती है तब स्वयं ज़ेड श्रेणी की सुरक्षा में बैठे राजनेता हालात पर काबू पाने का विफल प्रयास करते हैं। हम कह सकते हैं कि आज प्रजा को आतंकवाद से इतना डर नहीं जितना देश के राजनेताओं से है क्योंकि आतंकवादी तो बम्ब ब्लास्ट करके अथवा गोलियों से शरीर को छलनी करके जनता को मौत के घाट उतारकर भाग जाते हैं, परंतु राजनेताओं के द्वारा प्रजा की सुरक्षा का उचित प्रबन्ध न होने के कारण शेष जनता निर्बल, असहाय एवं भयभीत-सी हुई न सुख से जी सकती है और न मर सकती है। हम इस वातावरण में भारतवर्ष के भविष्य पर क्या भरोसा करें?

नाट्याभिरंगकालीन आंगिक मुद्राओं की गवेषणा

—रोशी गुप्ता

भारतीय रंगमंच की यह परम्परा रही है कि नाट्य लेखन एवं नाट्य रूपांतरण की सफल समाप्ति के लिए नाटक के प्रारम्भ में जहाँ ***नान्दी*** की स्थापना की जाती थी, वहीं नाटक की समाप्ति ***भरतवाक्य*** के माध्यम से सम्पन्न की जाती है। नाटक के प्रारम्भ में की जाने वाली नान्दी में किसी देवी या देवता की स्तुति की जाती है, जिससे यह प्रार्थना की जाती है कि उस रूपक का सफलतम ढंग से रंगमंच में उपस्थापन हो सके। किसी देवी या देवता की आराधना में सामान्यतः उनकी स्तुति के साथ-साथ उनको प्रणाम करने एवं उनके प्रति अपनी स्तुतियों को दोहराने के लिए नाट्य का आयोजन किया जाता था। नट एवं नर्तन दोनों मिलकर पूर्वरंग की स्थापना करते हैं, जिसमें अनेक प्रकार की आंगिक मुद्राओं का अभिनय भी किया जाता था। जिनमें प्रमुख हैं — प्रणाम मुद्रा, पुष्पांजलि मुद्रा, नृत्त एवं नृत्य की विविध आंगिक मुद्राएँ।

इसके साथ ही रूपक के मंचन में विभिन्न प्रकार की आंगिक मुद्राओं को नट, नटी, नायक, नायिका एवं सहनायकों के द्वारा अपनाया जाता है जिनमें प्रमुख हैं — त्रिपताक, आकाशभाषित, जनान्तिक, अपवारित आदि मुद्राएँ।

1. आकाशभाषित मुद्रा :

"आकाशे भातिषतम् इत्याकाशभाषितम्" अर्थात् आकाश में कही गई बात को आकाशभाषित कहते हैं। आकाशभाषित भी सूच्य-कथा की प्रस्तुति का एक मनोरंजक माध्यम है। इसमें कोई पात्र "क्या कह रहा है?" आदि शैली में, बिना किसी अन्य पात्र से, प्रश्न पूछता हुआ तथा बिना उत्तर पाये ही, उत्तर सुनने जैसा अभिनय करता हुआ कथानक को अकेले ही प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार आकाशभाषित में मुख्य तत्त्व हैं — उक्ति-प्रत्युक्ति की परम्परा तथा आकाशभाषी पात्र का एकाकित्व इसके अनन्तर संस्कृत रूपकों का एक विशिष्ट भेद है — ***भाण***। भाण प्रायः 'एकाहचरित' अर्थात् एक ही घटना पर आश्रित रूपक होता है। इसमें एकमात्र विट ही नायक होता है तथा वही 'आकाशभाषित' के सहारे अन्यान्य पात्रों का भी वाचिक अभिनय प्रस्तुत करता हुआ, कथानक को आगे बढ़ाता है।

महाकवि भवभूति ने भी अपने ग्रन्थ उत्तररामचरित में भी आकाशभाषित का यही अर्थ व्यक्त किया है। आकाशभाषित का अर्थ है — आकाश की तरफ़ मुँह करके अकेले ही बात करना। ***दशरूपक*** एवं ***साहित्यदर्पण*** में आकाशभाषित की व्याख्या एक समान ही दिखती है।

2. अपवारित मुद्रा :

अपवारित शब्द का अर्थ है — निगूहन। अर्थात् कुछ लोगों से छिपाकर अपनी बात कहना और इस प्रकार कहना कि अपने कुछ स्नेही जन ही उसे सुन सकें। महाकवि भवभूति ने भी अपने ग्रन्थ ***उत्तररामचरित*** में अपवारित का अर्थ इसी प्रकार किया है। दशरूपककार लिखते हैं कि —

रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम्।

3. जनान्तिक मुद्रा :

'जनस्य अन्तिकम् इति जनान्तिकम्' अर्थात् प्रियजन का सामीप्य। कभी-कभी रंगमंच पर मूलकथा के प्रवाह के बीच में ही कोई पात्र, हथेली की आढ़ में, अपने किसी प्रियजन से रहस्यात्मक वार्तालाप करने लगता है, जिसे अन्य पात्र सुन न सके। इसी को जनान्तिक मुद्रा कहते हैं।

वस्तुतः जनान्तिक में तीन प्रमुख तथ्य निहित होते हैं —

1. वक्ता-पात्र संवाद की गोपनीयता जताने के लिए हथेली की ओट का आश्रय ले लेता है।
2. वक्ता-पात्र मंच पर विद्यमान अन्य पात्रों से विमुख होकर, उनकी उपेक्षा करते हुए अपनी बात कहता है।
3. वक्ता-पात्र अपने उसी प्रियजन की ओर उन्मुख रहता है, जिसके साथ उसे बातचीत करनी होती है।

महाकवि भवभूति ने भी उत्तररामचरित में जनान्तिक की व्याख्या इसी प्रकार की है। साहित्यदर्पण में भी

इसका यही अर्थ लिया गया है।

4. त्रिपताक मुद्राः

इस मुद्रा में हथेली की कनिष्ठिका तथा अंगुष्ठ नामक उंगलियां नीचे मुड़ी रहती हैं, शेष तीन अर्थात् अनामिका, मध्यमा एवं तर्जनी ऊपर उठी रहती हैं। शेष तीनों अंगुलियों को संयुक्त करके जब रूपक का कोई पात्र किसी अन्य पात्र में यह चाहता है कि कोई तीसरा पात्र न सुन सके। इस रूप में यह त्रिपताक मुद्रा अपनाई जाती है। इसमें तीनों अंगुलियों को संयुक्त करके दक्षिण आंख के कोर के पास रखी जाती हैं। अपरोक्षता यह मुद्रा यवनिका या पर्दा की सूचक होती है।

5. प्रकाश से अप्रकाश :

'सर्वेभ्यः मंचस्थितेभ्यः पात्रेभ्यः श्राव्यं श्रावणीयम् इति सर्वश्राव्यम्' अर्थात् जो बात सबको सुनाने योग्य हो, उसी को प्रकाश या सर्वश्राव्य कहते हैं। कविराज विश्वनाथ ने भी साहित्य दर्पण में यहीं अर्थ स्वीकार किया है। जो बात सुनाने के योग्य न हो और मन ही मन कही जाए उसे अप्रकाश्य या अश्राव्य कहते हैं। साहित्यदर्पणकार ने भी इसी अर्थ को स्वीकार किया है।

'न श्राव्यं श्रावयितुं योग्यम् इति अश्राव्यम्'।

6. अभिनय :

अवस्था के अनुकरण को अभिनय कहते हैं। यह चार प्रकार का होता है। पहला – आंगिक अर्थात् जो अंग से किया जाए, दूसरा – वाचिक अर्थात् जो वाणी से किया जाए, तीसरा – आहार्य अर्थात् जो भूषण, वस्त्र आदि से किया जाए, चौथा – सात्विक अर्थात् जो स्तम्भ, स्वेद, रोमांचादि पूर्वोक्त सात्त्विक भावों के द्वारा सम्पन्न किया जाए।

7. नान्दी :

नान्दी का तात्पर्य है नन्दित (आह्लादित) करने वाली। नाट्याभिनय के पूर्व अर्थात् पर्दा खुलने के पूर्व ही मंच पर जो संगीतक प्रस्तुत किया जाता है उसे नान्दी या नान्दीपाठ कहते हैं। इस प्रक्रिया में वाद्यादि के साथ ही साथ देवों, द्विजों तथा भूपतियों आदि की स्तुतियां गाई जाती हैं जिससे दर्शकगण आह्लादित हो उठते हैं।

कालिदास के पूर्ववर्ती नाटककार भास ने अपनी नाट्यकृतियों में नान्दी का उपयोग नहीं किया है। उनकी नाट्यकृतियों का प्रारम्भ 'सूत्रधार के प्रयोग' से ही होता है – ***नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः।*** परन्तु कालिदास तथा उनके परवर्ती नाटककार सर्वप्रथम ***'नान्दीपाठ'*** का प्रयोग करते हैं। भावप्रकाशन में 'आचार्य शारदातनय' ने लिखा है कि सृष्टि के प्रारम्भ में नृत्य करते हुए भगवान् शंकर का वाहन नन्दी वृषभ, कल्पना द्वारा रंगता को प्राप्त हो गया। इस प्रकार नान्दी वृषभ के तद्रूप सम्बन्ध के ही कारण नाट्यारम्भ में की जाने वाली वह पूजा 'नान्दी' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

8. पुष्पांजलि मुद्राः

रूपक के प्रारम्भ में नान्दी में प्रयुक्त देवी या देवता की स्तुति करने के बाद उनके प्रति सर्वात्मना समर्पण करने की भावना एवं रूपक के विघ्न रहित सम्पादन की मनोकामनावश स्तुति के अन्त में पुष्पांजलि मुद्रा नाट्यकर्मियों के द्वारा अपनाई जाती है। इस आंगिक मुद्रा में दोनों हाथों की हथेलियों को जोड़ने से बने हुए करपात्र पुष्प रखकर देवताओं को पुष्पांजलि दी जाती है। पुष्पांजलि का अर्थ है – फूलों की अंजलि और ***अंजलि*** दोनों हाथों की हथेलियों को संयुक्त करके कुछ शंकु आकार बनने की मुद्रा को कहते हैं। नाटक के अतिरिक्त आज भी यह मुद्रा पूजन, अर्चना प्रसंग में भक्तों के द्वारा मन्दिरों में या घर में अपनाई जाती है।

9. प्रणाम मुद्रा :

प्रणाम शब्द का अभिप्रायः नमन, प्रणति, अभिवादन, दण्डवत् प्रणाम या साष्टांग प्रणाम से लिया जाता है। नाट्याभिरंगकालीन नान्दी के प्रसंग में जब किसी देवी या देवता की स्तुति की जाती है उस समय यह मुद्रा रूपक के अभिनयकर्ताओं के द्वारा अपनाई जाती है। प्रणाम मुद्रा में मनुष्य अपने दोनों हाथों की हथेलियों को संयुक्त करके हृदय के पास लाकर जब उस देवता के प्रति या सम्मुख अपना सिर झुकाकर खड़ा होता है ऐसी इस क्रिया को प्रणाम मुद्रा कहते हैं। यह क्रिया देवी–देवताओं के अतिरिक्त राजाओं के सम्मुख प्राचीनकाल में भी अपनाई जाती थी। आज भी पूजा–अर्चना के प्रसंग में प्रणाम करने की विविध मुद्राओं का प्रचलन समाज में देखा जा सकता है साथ

ही रूपक में मंचन के अवसर पर ही यह क्रिया रूपक कर्मियों के द्वारा अपने इष्ट को प्रसन्न करने के लिए अपनाई जाती है, जिससे उनका रूपक मंचन सकुशल सम्पन्न हो सके।

10. *नृत्त एवं नृत्य की विविध आंगिक मुद्राएँ:*

'नृत्त' एवं 'नृत्य' इन दोनों शब्दों में कुछ भेद हैं। 'नृत्त' ताल–लयाश्रित एवं भावाभिनय–शून्य होता है। 'नृत्य' भावाश्रित एवं पदार्थभिनयात्मक होता है। आचार्य धनंजय के अनुसार 'नृत्य' के भेदों की गणना नाट्य के दस भेदों में की जाती है एवं उनका कथन है कि –

'अन्यद् भावाश्रयं नृत्यं नृत्तं ताललयाश्रितम्।'

आचार्य धनिक ने भी इसकी व्याख्या इसी प्रकार की है – अनन्तर वह लिखते हैं कि नाट्य शब्द 'नट अवस्पन्दने' धातु से बनता है जिसका अर्थ 'किंचिच्चलन' होता है। इससे नाट्य में सात्विक भावों का बाहुल्य सूचित होता है और 'नृत्य' शब्द 'नृती गात्रविक्षेपे' धातु से बनता है। अर्थात् उसमें आंगिक अभिनय का प्राधान्य रहता है और नृत्त में नत्य के समान गात्र–विक्षेप तो होता है किन्तु भावों का अभिनय नहीं होता। यहाँ पूर्वरंग में नाटक के आदि में नृत्य और नृत्त का उपयोग देखा जाता है। नृत्य भाव के आश्रित होता है और नृत्त रस से आश्रित कहा जाता है।

11. *भरतवाक्य :*

भरतवाक्य का लक्षण इस प्रकार है –

नाट्यान्ते नायकप्रोक्तं प्रजामंगलसूचकम्।
भरतानां प्रियत्वाच्य तद्वाक्यमभिधीयते।।

नाटक के अन्त में आशीर्वादात्मक श्लोक होता है। इसी को 'भरतवाक्य' कहते हैं। भरत का अर्थ नट या अभिनेता है। महाकवि भवभूति ने 'भरतानां वाक्यम्' इस रूप में व्याख्या की है। छन्दोऽलंकारसौरभम् में भी 'भरतानां वाक्यम् इति भरतवाक्य'। अर्थात् भरतों या नटों का आशीर्वाद। मृचछकटिकम् 26 में भी 'भरत' का अर्थ नट लिया है। अर्थात् नटवाक्य या भरतवाक्य। नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य भरत के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के लिए ही अभिनेता नट अपने वाक्य को 'भरतवाक्य' की संज्ञा देते हैं। भरतवाक्य में लोगों की भलाई की कामना की जाती है। नाटक के अन्त में अभिनेताओं के प्रतिनिधि के रूप में सूत्रधार या कई अभिनेता मिलकर इस श्लोक को बोलते हैं। भरतवाक्य सम्भवतः इसी परम्परा के परिपालनार्थ 'अन्तिम मंगल' के रूप में नाटकों में रखा गया है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जाता है कि भारतीय रूपक मंचन की अवधारणा नाटक की सुखान्त अवस्थिति को निर्देशित करने की रही है, जबकि पाश्चात्य अवधारणा में रूपकों की समाप्ति दु:खान्त भी की जाती है। नाटक की सुखान्त समाप्ति के लिए रूपक के प्रारम्भ में जहाँ नान्दी को अपनाया जाता था वहीं रूपक के अन्त में भरतवाक्य को अपनाने का विधान नाट्यशास्त्रकारों ने किया है।

पशुपति नाथ

शिव को पशुपति कहा गया है। पशुत्व की परिधि में आने वाली दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों का नियंत्रण करना पशुपति का काम है। नर–पशु के रूप में रह रहा जीव जब कल्याणकर्त्ता शिव की शरण में जाता है तो सहज ही पशुता का निराकरण हो जाता है और क्रमशः मनुष्यत्व और देवत्व विकसित होने लगता है। शिव का आकार लिंग माना जाता है। उसका अर्थ यह है कि सृष्टि साकार होते हुए भी उसका आधार आत्मा है। ज्ञान की दृष्टि से उसके भौतिक सौंदर्य का कोई महत्त्व नहीं। मनुष्य को आत्मा की उपासना करनी चाहिए, उसी का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। शिव डमरू बजाते और मौज में आने पर नृत्य भी करते हैं। यह प्रलयंकर की मस्ती का प्रतीक है। व्यक्ति सदैव प्रफुल्लित–पुलकित जीवन जिए। उनका डमरू ज्ञान, कला, साहित्य और विजय का प्रतीक है। वह पुकार–पुकार कर कहता है कि शिव कल्याण के देवता हैं।

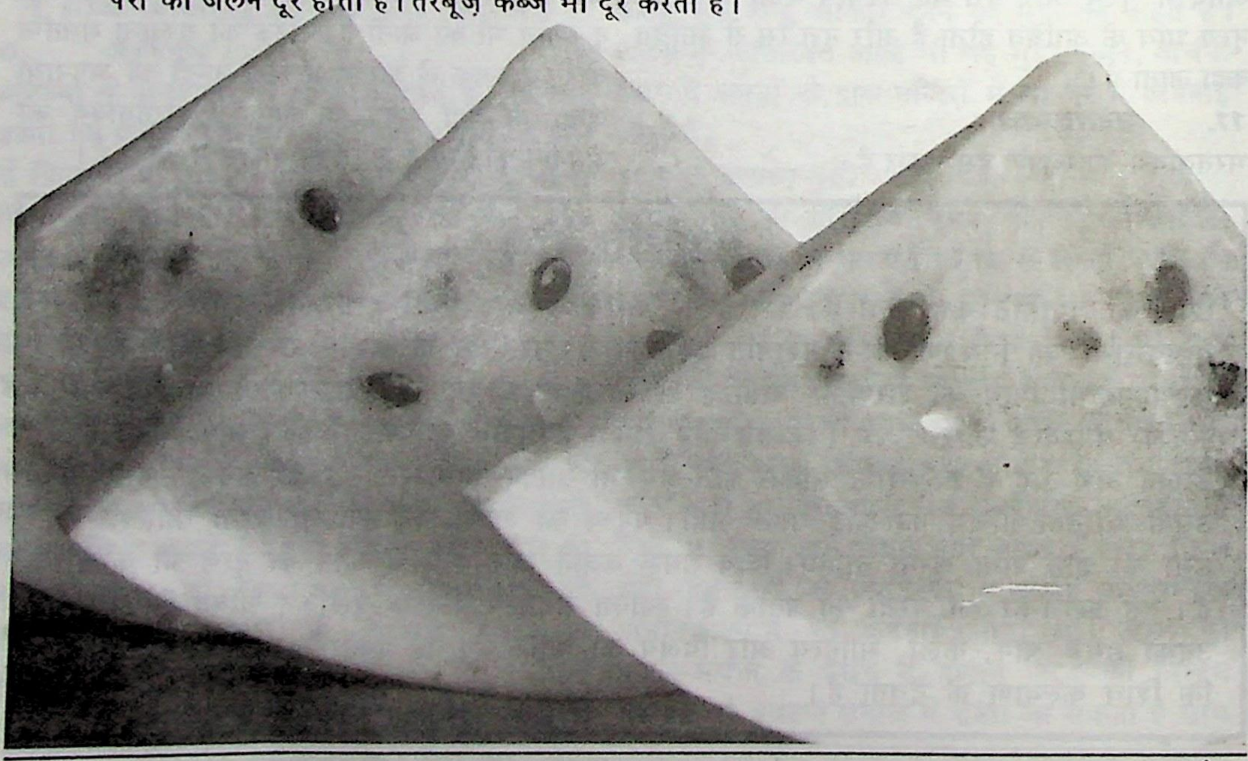
गर्मियों का अमृत फल

तरबूज़



गर्मी के लिए उपहार है तरबूज़ – गर्मी से बचाने का, गर्मी के प्रभाव को दूर करने वाला आँखों के लिए हितकारी है। इसमें पाए जाने वाले गुण यूँ हैं–

1. गर्मी में होने वाले रोगों, फोड़े–फुन्सियों, सिरदर्द, बुखार, लू आदि से बचाव होता है।
2. गुर्दों के रोगों में तो यह गज़ब का काम करता है। कोशिकाओ (अन्तड़ियाँ) की सूजन को दूर करता है, पत्थरी को गलाकर बाहर निकाल देता है, पेशाब के सभी रोग दूर होते हैं इसके सेवन से।
3. शरीर में कही भी सूजन हो, तरबूज खाने और इसका जूस पीने से लाभ होता है।
4. कैंसर को रोकने में और कैंसर से लड़ने की अद्‌भुज ताकत तरबूज़ में होती है।
5. यह हमें ऊर्जा व बल देता है। इसके सेवन से हमारी आयु बढ़ती है।
6. इससे मोटापा कम होता है।
7. तरबूज़ हड्डियों व दाँतों को मज़बूत बनाता है और दिमाग को ताज़गी मिलती है।
8. तरबूज़ का रस त्वचा को शुष्क व खुरदरी होने से बचाता है। हाई ब्लडप्रेशर के रोगियों को गर्मी के मौसम में प्रतिदिन तरबूज़ खाना चाहिए।
9. तरबूज़ के छिलकों को पूरे शरीर पर मलने से त्वचा कोमल बनती है। पैरों के तलवों पर रगड़ने से पैरों की जलन दूर होती है। तरबूज़ कब्ज भी दूर करता है।



माता-पिता की सेवा

बालकों के लिये अपने माता–पिता की सेवा करना परम कर्तव्य और अत्यन्त आवश्यक है। इनकी सेवा करने से महान् लाभ और न करने से महती हानि है। जिनके माता–पिता जीवित हैं, चाहे उनकी कितनी ही उम्र क्यों न हो, माता–पिता के आगे वे बालक ही हैं/बच्चे ही हैं। इसलिए सबको माता–पिता सेवा का लाभ उठाना चाहिये। सेवा से अभिप्राय है—तन, मन, धन द्वारा आदर से सेवा–शुश्रूषापूर्वक उनको सुख पहुँचाना, उनकी आज्ञा का पालन करना, उनके संकेत और मनकी रुचि के अनुसार आचरण करना तथा उनके चरणों में नमस्कार करना; क्योंकि बालक के पालन–पोषण और विवाह (शादी) आदि कार्यों में माता–पिता महान् क्लेश सहते हैं तथा मरने पर अपना सर्वस्व पुत्रों को देकर जाते हैं; ऐसे परम हितैषी माता–पिता को जो त्याग देता है अथवा उनकी सेवा नहीं करता, वह घोर नरक में जाता है। पद्मपुराण के भूमिखण्ड में बतलाया है—

पितरौ विकलौ दीनौ वृद्धौ दुःखितमानसौ।।
महागदेन संतप्तौ परित्यजति पापधीः।
स पुत्रो नरकं याति दारुणं कृमिसंकुलम्।।
वृद्धाभ्यां यः समाहूतो गुरुभ्यामिह साम्प्रतम्।
न प्रयाति सुतो भूत्वा तस्य पापं वदाम्यहम्।।
विष्ठाशी जायते मूढो ग्रामघोणी न संशयः।
यावज्जन्मसहस्रं तु पुनः श्वा चाभिजायते।।
पितरौ कुत्सते पुत्रः कटुकैर्वचनैरपि।
स च पापी भवेद् व्याघ्रः पश्चादृक्षः प्रजायते।।
मातरं पितरं पुत्रो न नमस्यति पापधीः।
कुम्भीपाके वसेत्तावद्यावद्युगसहस्रकम्।।

'जो किसी अंग से हीन, दीन, वृद्ध, दुःखी तथा महान् रोग से पीड़ित माता–पिता को त्याग देता है, वह पापात्मा पुत्र कीड़ों से भरे हुए भयंकर नरक में पड़ता है। जो पुत्र होकर बूढ़े माँ–बाप के बुलाने पर भी उनके पास नहीं जाता, उसके पाप का परिणाम बताता हूँ। वह मूर्ख अवश्य विष्ठा खाने वाला ग्रामसूकर होता है तथा फिर हज़ार जन्मों तक उसे कुत्ते की योनि में जन्म लेना पड़ता है। जो पुत्र कड़वे वचनों द्वारा भी माता–पिता की भर्त्सना करता है, वह पापी बाघ की योनि में जन्म लेता है, तत्पश्चात् रीछ होता है। जो पापबुद्धि पुत्र माता–पिता को प्रणाम नहीं करता, वह हज़ार युगों तक कुम्भीपाक नरक में निवास करता है।'

इसलिये मनुष्य को अपनी आत्मा के सुधार और कल्याण के लिये जितना भी बन पड़े,



अधिक–से–अधिक उनकी सेवा और आज्ञा–पालन करना चाहिये तथा उनके चरणों में नित्य नमस्कार करना चाहिये।

माता–पिता की सेवा के विषय में शास्त्रों में बड़ा भारी माहात्म्य लिखा है। केवल माता–पिता की सेवा से मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। कहीं–कहीं तो यह बात आती है कि उसे तीनों कालों का ज्ञान भी हो जाता है। पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड के 47वें अध्याय में एक बड़ी सुन्दर कथा आती है; जो यूँ है:—

पूर्वकाल में नरोत्तम नाम के एक ब्राह्मण थे। वे अपने माता–पिता का अनादर करके तीर्थ यात्रा के लिये चल दिये। सब तीर्थों में घूमते समय उनके वस्त्र तपके प्रभाव से प्रतिदिन आकाश में ही सूखते थे। इससे उनके मनमें बड़ा भारी अहंकार हो गया। वे समझने लगे कि मेरे समान पुण्यात्मा और महायशस्वी दूसरा कोई नहीं है। एक दिन वे मुख ऊपर किये यही बात कह रहे थे कि इतने में एक बगुले ने उनके मुँह पर बीठ कर दी। तब ब्राह्मण ने क्रोध में आकर उसे शाप दे दिया, जिससे बेचारा बगुला भस्म होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। बगुले की मृत्यु होते ही नरोत्तम के मन में बड़ा भारी मोह व्याप्त हो गया। उसी पाप के कारण तब से उनके वस्त्र आकाश में नहीं ठहरते थे। यह जानकर उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। तब आकाशवाणी ने कहा– 'ब्राह्मण! तुम परम धर्मात्मा मूक चाण्डाल के पास जाओ। वहाँ जाने से तुम्हें धर्म का ज्ञान होगा। उसका वचन तुम्हारे लिये कल्याणकारी होगा।'

यह आकाशवाणी सुनकर ब्राह्मण ***मूक चाण्डाल*** के घर गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि वह चाण्डाल सब प्रकार से अपने माता–पिता की सेवा में लगा है। जाड़े के दिनों में वह अपने माँ–बापको स्नान के लिये गरम जल देता, उनके शरीर में तेल मलता, तापने के लिये अँगीठी जलाता, भोजन के बाद पान खिलाता और रूईदार कपड़े पहनने को देता था। प्रतिदिन भोजन के लिये मिष्टान्न परोसता और वसंत–ॠतु में सुगन्धित माला पहनाता था। इनके सिवा, और भी जो भोग–सामग्रियाँ प्राप्त होतीं; उन्हें देता और भाँति–भाँति की आवश्यकताएँ पूर्ण किया करता था। ग्रीष्मकाल में प्रतिदिन माता–पिता को पंखा झलता था। इस प्रकार नित्यप्रति उनकी सेवा करके उनको भोजन कराकर ही वह भोजन करता था। माता–पिता की थकावट और कष्ट का निवारण करना उसका सदाका नियम था। इन पुण्यकर्मों के कारण चाण्डालका घर बिना किसी आधार और खम्भे के ही आकाश में स्थित था। उसके घर में त्रिभुवन के स्वामी भगवान् श्रीहरि मनोहर ब्राह्मण का रूप धारण किये नित्य विराजते थे। यह सब देखकर नरोत्तम ब्राह्मण को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने मूक चाण्डाल से कहा– 'तुम मेरे पास आओ, मैं तुमसे सम्पूर्ण लोकों के सनातन हितकी बात पूछता हूँ, उसे ठीक–ठीक बताओ।'

मूक चाण्डाल बोला– 'विप्र! इस समय मैं माता–पिता की सेवा कर रहा हूँ। आपके पास कैसे आऊँ?इनकी पूजा करके आपकी आवश्यकता पूर्ण करूँगा, तबतक मेरे दरवाज़े पर ठहरिये।' चाण्डाल के इतना कहते ही ब्राह्मण देवता क्रोध में भर गये और बोले– ''मुझ 'ब्राह्मण की सेवा छोड़कर तुम्हारे लिये कौन–सा कार्य बड़ा हो सकता है?''

चाण्डाल ने कहा– 'आप कोप क्यों करते हैं, मैं बगुला नहीं हूँ। अब आपकी धोती न तो आकाश में सूखती है और न ठहर ही पाती है। अत: आकाशवाणी सुनकर आप मेरे घर पर आये हैं। थोड़ी देर ठहरिये तो मैं आपके प्रश्न का उत्तर दूँगा; अन्यथा पतिव्रता स्त्री के पास जाइये।'

तदनन्तर चाण्डाल के घर से ब्राह्मणरूपधारी भगवान् विष्णुने निकलकर नरोत्तम ब्राह्मण से कहा– 'चलो, मैं पतिव्रता देवी के घर चलता हूँ।' नरोत्तम कुछ सोचकर उनके साथ चल दिये।

इस कथा से मालूम होता है कि मूक चाण्डाल माता–पिता का महान् भक्त था। माता–पिता की सेवा के प्रभाव से उसे तीनों कालों का ज्ञान था और वह अंत में स्वयं तो माता–पिता के सहित परमधाम में चला ही गया, उसके घर में बसने वाले जीव–जन्तु भी परमधाम में चले गये। क्रमश:

कृष्णावतार



शूरसेन नाम के एक राजा थे। शूरसेन के पुत्र वसुदेव विवाह करके अपनी पत्नी देवकी के साथ घर जाने के लिये रथ पर सवार हुए। उग्रसेन का लड़का था कंस। वह अपनी चचेरी बहिन देवकी को प्रसन्न करने के लिये स्वयं ही रथ हाँकने लगा। जिस समय कंस रथ हाँक रहा था, उस समय आकाशवाणी ने उसे सम्बोधित करके कहा– 'अरे मूर्ख! जिसको तू रथ में बैठाकर लिये जा रहा है, उसकी आठवें गर्भ की सन्तान तुझे मार डालेगी।' कंस बड़ा पापी था। आकाशवाणी सुनते ही वह देवकी को मारने के लिये तैयार हो गया। अंत में वसुदेव ने देवकी के पुत्रों को उसे सौंपने का वचन देकर देवकी की रक्षा की।

तत्पश्चात् कंस ने देवकी और वसुदेव को कैद कर लिया। उन दोनों से जो–जो पुत्र होते गये, उन्हें वह मारता गया। किंतु भगवान् के विधान को भला कौन रोक सकता है? आखिर वह समय आ ही गया। देवकी के गर्भ से जगत् के तारणहार नारायण ने श्री कृष्ण के रूप में अवतार लिया।

भगवान् के जन्म लेते ही योगमाया की प्रेरणा से कारागार खुल गया। वसुदेव जी बालकृष्ण को सूप (छाज) में रखकर गोकुल चल दिये। रास्ते में यमुना जी प्रभु का चरण छूने के लिये व्याकुल हो गयीं। अन्तर्यामी बाल–प्रभु यमुना के मन की बात समझ गये। उन्होंने अपने चरण–स्पर्श से यमुना की व्यथा को दूर किया। वसुदेव ने नन्दबाबा के घर जाकर अपने पुत्र को यशोदा जी के पास सुला दिया। उनकी नवजात कन्या लेकर वे कारागार में लौट आये।

बालक श्रीकृष्ण को पाकर नन्द और यशोदा की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। यशोदा को पुत्र हुआ है, यह सुनते ही पूरे गोकुल में आनन्द छा गया। वहाँ भगवान् अपनी बाललीला से यशोदा को नित्य रिझाते रहते थे। उनकी वंशी की धुन पर सभी मोहित हो जाते थे। गोपियों के घरों से माखन चुराने के कारण वे माखनचोर कहलाये। श्रीकृष्ण ने बचपन में ही खेल–खेल में पूतना, बकासुर, तृणावर्त आदि का विनाश किया। एक उँगली पर गोवर्धन–पर्वत उठाकर इन्द्र का घमण्ड चूर कर दिया।

एक दिन भगवान् अपनी मित्र–मण्डली के साथ गेंद खेल रहे थे। गेंद यमुना में गिर गयी। बालक श्रीकृष्ण गेंद निकालने के लिये यमुना में कूद पड़े। यमुना में कालिय नाग रहता था। भगवान् उसका मान–मर्दन कर उसके फण पर नृत्य करने लगे। इस प्रकार भगवान् ने छोटी–अवस्था में अनेक लीलाएँ कीं।

कुछ समय बाद श्रीकृष्ण अक्रूर के साथ गोकुल से मथुरा आये। वहाँ उन्होंने अपने परम भक्त सुदामा, माली और कुब्जा आदि पर कृपा की। तदनन्तर भगवान् ने लीलामात्र से कंस आदि असुरों का संहार कर अपने माता–पिता को बन्धन से छुड़ाया। युद्ध के मैदान में अर्जुन को धर्म, कर्म और शाश्वत सत्य का उपदेश दिया। भगवान् का वह अमर संदेश गीता के रूप में आज भी जन–जन का कल्याण कर रहा है।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी के शुभावसर पर लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण को हम सब नमस्कार करते हैं।

उदर रोग का ज्योतिषशास्त्रीय निदान एवं उपचार

–रोहित शास्त्री

''यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'' का सिद्धान्त वैदिक दर्शनों में प्राचीन काल से ही प्रचलित है। इस सिद्धान्त से यही प्रतीत होती है कि 'सौर जगत्' में सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह–नक्षत्रों की विभिन्न गतिविधियों एवं क्रिया–कलापों में जो नियम काम करते हैं, निश्चय से वे ही नियम प्राणी मात्र के शरीर में स्थित और जगत् की इकाई का संचालन करते हैं। ब्रह्माण्ड रश्मियों द्वारा हमारे सौर जगत् में स्थित ग्रह–नक्षत्रों के पिण्डों से सीधा सम्पर्क है– जिसको रासायनिक बनाकर निरन्तर परिवर्तित होती हुई हम पर निरन्तर और बेरोक–टोक प्रभाव डाल रही है।

इस सौरजगत् में स्थित ग्रह, नक्षत्र–तारा पिण्डों के साथ हमारा सतत सम्बन्ध उनकी गति स्थिति एवं रासायनिक परिवर्तनों के अनुरूप हमारे जीवन को प्रभावित करता रहता है। ग्रहों के द्वारा जलवायु में जो परिवर्तन होता है तथा इस परिवर्तन का मानव–जीवन पर भी प्रभाव पड़ता है। जलवायु ही मनुष्य की शारीरिक प्रखरता या मन्दता का हेतु है। मनुष्य की शारीरिक एवं वैदिक शक्तियों या मन्दता का हेतु है। मनुष्य की शारीरिक एवं बौद्धिक शक्तियों का उतार–चढ़ाव जलवायु परिवर्तन के साथ–साथ होता रहता है। शरद्काल में उसकी शारीरिक एवं बौद्धिक शक्ति अधिक हो जाती है, जबकि ग्रीष्म काल में पाचन शक्ति–न्यूनतम बिन्दु पर होती है। आज के वैज्ञानिक मानव एवं अन्य प्राणियों पर ग्रहों के प्रभाव में आस्था रखें या न रखें, किंतु वे इस बात से आश्चर्यान्वित हुए बिना नहीं रह सकते कि समुद्र की समतलता में, ऋतुओं के परिवर्तन में तथा भूकम्प आदि की आवृत्तियों में जो घटना चक्र दिखलाई दे रहा है, उसका सूर्य एवं चन्द्रमा आदि की प्रगति–स्थिति के साथ सीधा सम्बन्ध है। पूर्णिमा एवं अमावस्या को समुद्र के अन्दर ज्वार–भाटे की लहरें अत्यधिक बड़ी हो जाती हैं। अतएव इनके प्रभाव वंश ज्वार–भाटा तूफ़ान या भूकम्प जैसी घटनाएँ घटित होती हैं। रूस के प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानविद् प्रो. जार्जिस लाबोवस्की ने अपने विश्वास को प्रकट करते हुए कहा कि तारों एवं ग्रहों से आने वाली रश्मियां गर्भाधान एवं जन्म के समय व्यक्ति के भावी भाग्य को प्रभावित करती हैं। जातक के जन्मकाल में आकाशस्थ तारों की स्थितियों की बड़ी महत्ता मानते थे, तो यह अकारण नहीं था; क्योंकि न केवल इन तारों से आने वाली रश्मियां पशु एवं मानव भ्रूण को प्रभावित करती हैं, अपितु पृथ्वी पर समस्त सजीव प्राणियों की बनावट गर्भाधान के समय उनके अण्ड या पिण्ड के ऊपर इन रश्मियों का जो प्रभाव पड़ता है, उस पर सीधी निर्भर करती हैं, क्योंकि सजीव या निर्जीव सभी भौतिक पदार्थ विद्युत्कणों से बने हैं जोकि भौतिक अवस्था से परिणमित रश्मियाँ ही हैं।

यहां पर चन्द्रमा की विशेषता बताते हुए कहा गया कि पूर्णिमा काल में जब चन्द्रमा खमध्यासन्न (आकाशीय मध्य रेखा के पास) होता है तो उसके खिंचाव के कारण उस समय पदार्थ का भार 18, 40, 440 वां भाग घट जाता है। चन्द्रमा का यही खिंचाव हमारे शरीर की रक्तसंचार प्रणाली को भी असामान्य बनाता है। अन्य अवसरों की अपेक्षा पूर्णिमा को उन्माद, मिरगी जैसे मानसिक रोग तथा रक्त चाप, रक्तविकार एवं नाड़ी रोग जैसे शारीरिक रोग अपनी पराकाष्ठा पर होते हैं।

वैदिक दर्शनों में कर्म के संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमान–ये तीन भेद अभिहित हैं। हमारे जीवन में उत्पन्न होने वाले रोग इन्हीं तीन प्रकार के कर्मो के परिणाम है। मानव को होने वाले जन्म जात रोग तथा वंशानुक्रम से प्राप्त रोग हमारे संचित कर्मो के परिणाम हैं तथा जानबूझकर कृत दुष्कर्मो द्वारा उत्पन्न रोग क्रियमाण का फल होते हैं। परंतु ज्योतिषशास्त्र ने इन विविध कर्मो का विचार करने के लिए तीन भिन्न–भिन्न पद्धतियों का सहारा लिया है। होरा शास्त्र में संचित कर्म के फल का विचार आधान (Conception) कुण्डली एवं जन्म कुण्डली में व्याप्त योगों द्वारा, प्रारब्ध के फल का विचार दशाओं द्वारा तथा क्रियमाण के फल का विचार गोचर एवं प्रश्नकुण्डली द्वारा किया जाता है। अतः अन्धत्व,

काणत्व, मूकत्व आदि जन्म जात रोगों का विचार करते समय होराशास्त्र के आचार्यों ने गर्भाधान एवं जन्मकुण्डली के योगों का महत्व दिया है। किंतु वात–पित्त, एवं कफ़ के विकार द्वारा उत्पन्न रोग तथा शरीर के विविध अंगों में उत्पन्न होने वाले विकारों का विचार योगों के साथ दशा–अन्तर्दशा एवं प्रत्यन्तर दशा आदि की अपेक्षा रखता है। मिथ्या आहार–विहार आदि के द्वारा उत्पन्न रोगों का क्रियमाण का फल माना जाता है। किंतु यह क्रियमाण भी संचित एवं प्रारब्ध के मिलाप से उत्पन्न होता है। हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार, जिनसे हमें किसी भी प्रकार का दु:ख मिलता है उसको रोग कहते हैं। होराशास्त्र में कहा गया है कि रोगी का फलादेश करने से पूर्व उसकी आयु की भलीभांति परीक्षा करनी चाहिये। यथा–

आयुः पूर्व परीक्षेत् पश्चाल्लक्षणमादिशेत्।
अनायुषां तु मर्त्यानां लक्षणैः किं प्रयोजनम्।।

हमारे आचार्यों ने रोग का कारण पूर्वार्जित कर्म या जन्मान्तर में किये गए पाप को माना है यथा–जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण जायते।। प्रश्नमार्ग–53/27

तथा अन्य विषयों की भांति मनुष्य को होने वाले रोगों के सम्बन्ध में भी जन्माङ्ग के आधार पर पूर्व जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इस शास्त्र की मान्यता यह है कि प्रत्येक लघु एवं बड़ा रोग पूर्वाजित कर्म फल के रूप में उत्पन्न होता है। अपनी इस मान्यता के अनुसार वह किसी भी व्यक्ति की जन्म कुण्डली के आधार पर वर्षों पूर्व ही यह घोषित कर देने में समर्थ है कि उस व्यक्ति को अमुक समय में अमुक रोग होगा और उसका परिणाम अमुक होगा। ज्योतिष शास्त्र में रोग एवं स्वास्थ्य के सम्बन्ध में षष्ठभाव जन्माङ्ग का महत्वपूर्ण भाव है। व्यक्ति के सामान्य स्वास्थ्य का विश्लेषण षष्ठभाव में स्थित राशि षष्ठेश की स्थिति, लग्न एवं लग्नेश की स्थिति तथा इनकी पापग्रहों के साथ मुक्ति एवं उस पर पापग्रहों की दृष्टि होने से रोग का विचार किया जाता है। यहं पर ज्योतिष दृष्टि से काल–पुरुष के अंगों का विचार करने से यह प्रतीत होता है कि पंचम राशि को मुख्य माना गया उदर रोग के लिए भचक्र की तुल्य द्वादश–विभागात्मक राशियां भगवान् काल पुरुष के मस्तकादि चरण पर्यन्त अंग है। जैसा कि श्री वराहमिहिराचार्य ने कहा है।

शीर्षमुख वाहु हृदयोदराणि कटिबस्तिगुह्यासंज्ञानि।
उरु जानूजङ्घे जानूजङ्घे चरणाविति राशयोऽजाद्याः।।
कालनरस्यावयवान् पुरुषाणां चिन्तयेत् प्रसवकाले।
सदसद्ग्रहसंयोगात् पुष्टाः सौपद्रवास्ते च।।

अर्थात् कालपुरुष के अंग मेष शिर, वृष भुज, मिथुन, भुजद्वय, कर्क, हृदय, सिंह, उदर, कन्या कटि, तुला वस्ति नाभि का निचला भाग, वृश्चिक गुप्त (इन्द्रिय एवं गुदा) धनु उरुद्वय (जंघा) मकर घुटना, कुम्भ (एडी से घुटना तक) और मीन चरण हैं। जीवों के जन्म काल में अवयवों का विचार इस प्रकार करना चाहिये, जो अवयव शुभ राशि में वा शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो वह अंग जातक का पुष्ट होता है। अशुभ ग्रह से पीड़ित या दृष्ट हो तो उस अंग को दुर्बल, कमज़ोर या पीड़ा युक्त समझना चाहिये। उक्त अंग विभागों में उदर (पेट) का विचार सिंह राशि से करना उचित है तथा वह पञ्चम भाव का द्योतक है। ज्योतिषग्रन्थों में नक्षत्रादि से भी उदर रोग का विचार किया जाता है। कृत्तिका, मघा, हस्त, मूलादि नक्षत्रों में उत्पन्न बालक भी उदर रोग से पीड़ित होता है। उदररोग सम्बन्धि ग्रहों की भी चर्चा की गई है। जिसमें मुख्यतः चन्द्रमा, बुध, गुरु तथा केतु आते हैं। यदि चन्द्रमा सिंह राशि में हो, लग्न या षष्ठ स्थान में हो तो जातक को उदर रोग होता है। अरुचि, मंदाग्नि, अजीर्ण, अतिसार, संग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, कृमि, जलोदर एवं उदर शूल आदि सब रोग उदर रोग कहलाते हैं। जिस प्रकार शरीर के अन्दर ती. दोष कफ़, पित्त एवं बात हैं; उसी प्रकार उदर रोग भी कफोदर रोग या जलोदर रोग, पित्तोदर रोग एवं वातोदर रोग के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। ग्रह भाव और स्थान से बने उदर रोग के योग्य अनेक प्रकार के हैं, जिसका विवेचन ज्योतिष शास्त्र के गणकों ने स्वास्थ्य सम्बन्धी रचित ग्रन्थों में किया है। इस रोग के योग इस प्रकार हैं।

– कुण्डली में सिंह राशि में चन्द्रमा हो।
– जातक के कुण्डली में षष्ठस्थान में चन्द्रमा हो।
– सप्तम स्थान में राहु या केतु हो।

— कुण्डली में अष्टम स्थान में शनि तथा लग्न में चन्द्रमा हो।
— लग्न में विषम राशि में षष्ठेश हो, विषम राशि में ही लग्नेश हो तथा उन दोनों पर राशि की दृष्टि हो।
— षष्ठ स्थान में पापग्रह, अष्टम स्थान में शनि एवं शुक्र तथा सप्तम स्थान में षष्ठेश हो।
— पञ्चम स्थान में वक्री ग्रह तथा षष्ठ स्थान में लग्नेश एवं चतुर्थेश हो।
— लग्न स्थान से षष्ठ एवं अष्ठम भाव में पापग्रह तथा सप्तम में पापग्रह के साथ षष्ठेश हो।
— यदि कुण्डली में पञ्चम भाव में सिंह राशि हो उसमें शनि राहु मुक्त होकर विद्यमान हो तथा पञ्चमेश सूर्य नीच राशि तुला में हो या षष्ठ भाव में हो तो उदर रोग अवश्य होगा।

फलदीपिका में–

सोग्रे पञ्चमभे भवेदुदररुग्रन्थारिनाशान्विते
तद्वत् सप्तमनेधने सगुदरुकद्रुक्रेच गुह्यंमयं:।।

जातक पारिजात में–

मन्दी वातमहिश्च केतुरुदर व्याधिर्बुधक्षेत्रगो।

षष्ठेश के साथ यदि राहु अथवा केतु हो तो उदर रोग होता है जातकतत्वम में

रन्ध्रे मन्दे लग्ने चन्द्रे उदर रोग:।

अरुचि, अजीर्ण एवं मंदाग्नि के योग:–

अरुचि, अजीर्ण एवं मन्दाग्नि जैसे रोग पाचन प्रक्रिया में गड़बड़ी के द्योतक होते हैं। इन रोगों के योग इस प्रकार हैं।

— जिसकी जन्म कुण्डली में लग्नस्थान से तृतीय भाव में गुरु हो तो अरुचि रोग होता है।
— षष्ठ स्थान में गुरु हो तो अरुचि रोग होता है।
— 'अजीर्णगुल्मामयशूलमेति कुजे विलग्ने विवलेऽरिनाथे। अर्थात् लग्न में मंगल हो तथा षष्ठेश निर्वल हो तो अजीर्ण रोग होता है।
— लग्न शनि से दृष्ट या युत हो तथा निर्वल अष्टमेश पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो मन्दाग्नि नामक उदर रोग होता है।
— किसी जातक की जन्म कुण्डली में षष्ठ या अष्टम स्थान में शुक्र के साथ चन्द्रमा हो और उस पर पापग्रहों की दृष्टि हो तो मन्दाग्नि रोग होता है।
— लग्न में पापग्रह तथा अष्टम में शनि हो तो मन्दाग्नि रोग होता है।
— लग्न में राहु तथा अष्टम में शनि हो तो भी मन्दाग्नि रोग होता है।
— अति परिभूत: कृपण: सहज जितो मानवो भवति जीवे।
— मन्दाग्नि स्त्री विजितो दुश्चिक्ये पापकर्मा च।।

जिस जातक के तृतीय भाव में वृहस्पति हो तो व्यक्ति अपच रोग से पीड़ित होता है। अजीर्ण नामक उदर रोग होने से जातक की मृत्यु होती है, इसका कुछ योग इस प्रकार है–

— जन्मांग में लग्नेश एव अष्टमेश गुरु के साथ हो।
— लग्नेश एवं गुरु षष्ठ स्थान में हो।
— लग्नेश, चतुर्थेश एवं गुरु एक साथ हो
— लग्नेश, चतुर्थेश एवं द्वितीयेश एक साथ हो
— लग्नेश, चतुर्थेश एवं अष्टमेश एक साथ हो।

अतिसार उदर रोग के योग–

अतिसार रोग में बार–बार दस्त आते हैं। यह रोग मनुष्य को कमज़ोर कर देता है।

— शनि की राशि में बुध हो तथा उस पर सूर्य की दृष्टि हो।
— सप्तम स्थान में शुक्र हो।
— लग्न में राहु एवं बुध हो तथा सप्तम स्थान में शनि मंगल हो।
— षष्ठस्थान में शुक्र हो तथा षष्ठेश पापग्रहों से दृष्ट अथवा युत हों।

संग्रहणी रोग के योग–

— अंशात्सुते केतौ संग्रहणी।
— कारकांश लग्न से पंचमभाव में केतु स्थित हो तो संग्रहणी रोग से पीड़ित होता है।
— कोषे मन्दे वा राहौ संग्रहणी।

द्वितीय भाव शनि अथवा राहु से युत हो तो संग्रहणी रोग होता है।

गुल्म रोग के योग–

— कर्कालिघटांशे चन्द्रे समन्दे गुल्मरोगा:।
— क्षीणे मन्दगृहोदये हिमकरे पापग्रहैरान्विते
रन्ध्रारातिगतेऽथवा पवन कृत् गुल्मादिरोगं वदेत्।
चन्द्रे पापविपन्चरान्तरगते मन्दे मदस्थानगे
जातो विद्रधिजन्मशोषजनितै: सन्तप्तदेहो

भवेत्।

प्लीहा रोग के योग–

जातकालंकार में–

दृष्टे कूरैर्न सौम्यैर्यदि रिपुगृहपे चोड्डुपे प्लीहवान् स्या देवं कामाङ्गनाथे तदनु रविसुतस्तुयोगेनष्ट दृष्टि:।

प्लीही स्याल्लग्ननाथे दिनकरतनये क्रूरनिपीडिते चेत् सौढयायुङ्मानव: स्यात्तदनुसदनगते प्लीहवान् हर्षहीन:। ***भाव प्रकाशे–***

रोगेश्वरे रात्रिबलौ जलेन युक्तेक्षिते
प्लीहयुतो न सौम्यै:।
कामाङ्गपे पापखगेन दृष्टे चन्द्रे तथा
प्लीहरुजार्दित: स्यात्।
पापेन दृष्टे यदि लग्नगेहे शनौ तदा
प्लीहनिपीडितश्च।
पापार्दितेलग्नगते शनौ वा सुखेन
हीनोऽनिलगोल रोगी।

षष्ठेशे चन्द्रे पापयुते प्लीहरोग:।
लग्नेशेऽस्ते क्रूरदृष्टे शुभदृग्हीने प्लीहरोग:।
चन्द्रेश षष्ठेशे क्रूरभावदृष्टौ प्लीहरोग:
कामाङ्गेशे चन्द्रे क्रूरमात्र दृष्टे प्लीहरोग:
सौरारमध्यगे चन्द्रे मृगेऽर्के प्लीहश्वासादि:।
सुतगौ मन्दचन्दौ प्लीहरोगी।

उदर रोग में विंशोत्तरी दशा की प्रधानता–

होराशास्त्र में विशोत्तरी, अष्टोत्तरी, योगिनी आदि अनेक प्रकार की दशायें बतलाई गई हैं। किंतु उदर रोग के फलादेश के लिये प्रधान रूप से विंशोत्तरी दशा ही ग्रहण की जाती है। प्रत्येक ग्रहों की महादशा वृहत्पराशर होरा शास्त्र में पठित है, जैसे सूर्य–7, चं–10, मं–6, रा–18, वृ–16, श–19, वु–17, केतु–7, शुक्र–20 वर्षादि है। ग्रहों की महादशा में अन्तर्दशा तथा प्रत्यन्तरदशा साधन की प्रक्रिया अभिहित है। यहां दशा, अन्तर्दशा तथा प्रत्यन्तरदशा की साधन प्रक्रिया अभिहित है। महादशा, अन्तर्दशा तथा प्रत्यन्तर दशा से उत्पन्न होने वाले कुछ योग इस प्रकार हैं–

–अष्टमभावस्थ चन्द्रमा की दशा में– जलोदर रोग
–तृतीया भावस्थ बुध की दशा में– गुल्मोदर रोग
–नीचांशयुत गुरु की दशा में– गुल्मोदर रोग
–षष्ठस्थ गुरु की दशा में– उदर रोग
–अति शत्रुराशिगत शुक्र की दशा में– गुल्म, संग्रहणी रोग
–समराशिगत शुक्र की दशा में– गुलमोदर रोग
–सप्तमस्थ शुक्र की दशा में– गुलमोदर रोग
–लग्नगत केतु की दशा में– अतिसार
–अष्टमभावगत केतु की दशा में– संग्रहणी रोग
–सूर्य से अष्टम व्यय में स्थित राहु की अन्तर्दशा में– अतिसार, गुल्म
–राहु से 6, 7 या 12वें में स्थित पापयुत शनि– गुल्म रोग
–शुक्र की महादशा में उपचय स्थान में स्थित राहु– अजीर्ण उदररोग
–बुध की अन्तर्दशा में मंगल की प्रत्यन्तर दशा– मन्दाग्नि रोग
–बुध की अन्तर्दशा में केतु की प्रयन्तर दशा– उदर रोग

उदर रोग के उपचार:– ज्योतिष शास्त्र में दृष्ट और अदृष्ट–उपायों के द्वारा रोग निवृति के लिए विवेचन किया गया है। ***दृष्ट उपायों को ग्रह–चिकित्सा तथा अदृष्ट उपयों को प्रायश्चित्त कहते हैं।*** ग्रहों के अशुभ–प्रभाव से निकल पाने के लिये मुख्यत:, मणि, मन्त्र, औषधि, दान एवं स्नान का उपयोग किया गया है। रत्नविज्ञान, मन्त्रशास्त्र, आयुर्वेद एवं धर्मशास्त्र ऐसे शास्त्र हैं; जिनमें मणि, मन्त्र, औषधि, दान एवं स्नान के समस्त शास्त्रीय पहलुओं पर विस्तार से विवेचन किया गया है। ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव को दूर करने के लिए प्राचीन काल से रत्न धारण करने की विद्या चली आ रही है। वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में रत्नों तथा उनके गुण–दोषों का विस्तार से विचार किया है। माणिक्य, मोती, मूंगा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, गोमेद एवं वैदूर्य ये सूर्यादि नवग्रहों के रत्न कहे गए हैं। मेषादि लग्न में उत्पन्न व्यक्तियों को रोग निवृत्ति के लिये अपने लग्नेश से सम्बन्धित रत्न धारण करना चाहिये। उदर रोग के निवृत्ति के लिए वैदिक मंत्र एवं तान्त्रिक मन्त्रों का भी विवेचन किया गया है। उक्त ग्रह की महादशा में अशुभ ग्रहों की अन्तर्दशा में वैदिक एवं तान्त्रिक मन्त्रों के जप या रत्न धारण करने से उदर रोगी जातक के लिये शुभ सूचक होता है।

माता कस्तूरबा



यद्यपि वीरांगना दुर्गावती और लक्ष्मीबाई की तरह कस्तूरबा ने तलवार नहीं उठायी, अहल्याबाई की तरह सिंहासन पर बैठकर राज-कार्य नहीं चलाया, फिर भी उनमें अपार शौर्य और साहस था और वे गुण विद्यमान थे, जो गाँधीजी-जैसे नर-रत्न की धर्मपत्नी के लिये आवश्यक थे। वे राष्ट्र की सच्ची सेविका थीं; धरती के टुकड़ों पर नहीं, देश के मानव-मात्र के हृदयों पर उनका राज्य था। उनकी सत्ता महल और झोंपड़ी पर समान रूप से थी।

उन्नीसवीं सदी का अन्तिम चरण गुलामी और विदेशी शासन की बेड़ी से जकड़ा हुआ था। भारतवर्ष के लिये यह महान् संकट का समय था। भारतीयों को पराधीन् बनाये रखने की बड़ी-से-बड़ी चाल चली जा रही थी। ***इसी समय भारत के भाग्य-गगन में कुछ दिव्य नक्षत्र उदित हुए, पुण्यसलिला भागीरथी के तटपर तीर्थराज प्रयाग में हिंदूधर्म के भूषण महात्मा मालवीयजी का जन्म हुआ। स्वाधीनता की स्वच्छ ज्योत्स्ना अँगड़ाई लेने लगीं। संयोग की बात है, इसी परिस्थिति में गाँधी जी और उनकी धर्मपत्नी कस्तूरबा ने पोरबन्दर में एक ही समय दो-चार मास आगे-पीछे सन् 1839 ई. में जन्म लिया।*** दोनों के पिता एक-दूसरे के घनिष्ठ मित्र थे। कस्तूरबा के पिता गोकुलदास मकनजी एक प्रसिद्ध व्यापारी थे और माता का नाम वृजकुँवरि था। 'बड़े. बापकी बड़ी बेटी' होने से उनका लालन-पालन बहुत अच्छी तरह हुआ। कस्तूरबा के माता-पिता कट्टर वैष्णव थे और धार्मिक विचारों में उनकी दृढ़ आस्था थी। तेरह साल की ही अवस्था में कस्तूरबा का विवाह गाँधीजी से कर दिया गया। गृहस्थाश्रम-प्रवेश सरस और सुखपूर्ण था। यद्यपि गाँधीजी पत्नी के प्रति कुछ कड़े थे, फिर भी दाम्पत्य-जीवन की स्निग्धता और कोमलता से दोनों के दिन सानन्द बीत गये। कस्तूरबा का चरित्र इतना विशाल और गौरवपूर्ण था कि महात्मा गाँधी का एकपत्नी व्रत अक्षुण्ण रहा। अठारह साल की अवस्था में ही कस्तूरबा को माता बनने का सौभाग्य मिला।

गाँधीजी की जीवन-यात्रा कस्तूरबा के साथ आरम्भ हुई। गाँधीजी को यही सनक लगी रहती थी कि उनकी पत्नी आदर्श पत्नी कहलाये। बाल्यावस्था में कस्तूरबा को पर्याप्त शिक्षण नहीं मिला था। गाँधीजी की प्रेरणा से उन्होंने गुजराती भाषा का थोड़ा-बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया। गाँधी जी पतिव्रत-धर्म के पालन पर बहुत ज़ोर देते थे। उनकी स्वाभाविक इच्छा थी कि पत्नी उनके कठोर नियन्त्रण में रहे। विवाह होने के कई साल बाद तक गाँधी जी हाई स्कूल में पढ़ते थे; परंतु पत्नी के साथ घर पर रहकर सुख पूर्वक गृहस्थ-जीवन बिताने में उन्हें किसी अड़चन का सामना नहीं करना पड़ा। गाँधी जी को बैरिस्टरी का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिये विलायत जाना पड़ा। इस अवकाश में कस्तूरबा में संयम, नियमन और सहिष्णुता का उचित मात्रा में विकास हुआ; भावी जीवन-संग्राम की तैयारी का अच्छा अवसर मिल गया। पति की दक्षिण अफ्रीका-यात्रा में तो उन्हें साथ जाना पड़ा। वे गाँधी जी से उनकी योजनाओं में सहमत हो जाया करतीं और विदेश में उन्होंने आदर्श हिंदू-महिला की तरह पति के चरण-चिह्नों का अनुगमन किया। कस्तूरबा को गृहस्थ-जीवन का आनन्द और सुख अफ्रीका में ही मिल सका। तपोमय जीवन-यज्ञ में

स्वार्थों की आहुति कर पति के सुख–दु:ख में हाथ बँटाना ही उनका कर्तव्य हो गया। वे एक महान् सत्याग्रही की जीवनसंगिनी बन गयीं। अफ्रीका का जीवन उनके लिये अग्नि–परीक्षा था। गाँधीजी ने अपने 'सत्य के प्रयोग' ग्रन्थ में लिखा है कि 'अपने अत्याचारों और कठोर नियमों से जो दु:ख मैंने अपनी पत्नी को दिया है, उसके लिये अपने–आपको कभी क्षमा नहीं कर सकता।' एक हिन्दूपत्नी ही ऐसे अत्याचारों को सहन कर सकती है। ***बा*** सहनशीलता की अवतार थीं। ***कस्तूरबा*** में जहाँ स्वाभिमान था, वहीं कष्टसहिष्णुता की अपरिसीम शक्ति भी थी। अफ्रीका में गाँधीजी का जीवन एक प्रयोगशाला बन गया। उन्होंने ***बा*** को कपड़े धोने, बर्तन माँजने आदि की भी शिक्षा दी। एक बार कस्तूरबा को मांस का झोल (रसा) देने का निश्चय किया; परंतु बा ने अति दृढ़ता से भगवान् के भरोसे अस्वीकार कर दिया। सरकार द्वारा विवाहों की रजिस्ट्री कराये जाने का कानून स्वीकृत होने पर आशंका उठ खड़ी हुई कि बहुत–से भारतीयों का विवाह अवैध ठहरा दिया जायगा और विवाहिताएँ रखैल समझी जायँगी। गोरी सरकार इस तरह भारतीयों की सम्पत्ति पर हाथ साफ़ करना चाहती थी। इस पर गाँधी जी के नेतृत्व में आन्दोलन चलाया गया और वे कुछ सत्याग्रहियों के साथ जेल में बंद कर दिये गये। पति की अनुगामिनी कस्तूरबा ने वहाँ की महिलाओं में घूम–घूमकर सत्याग्रह का शंख फूँका और स्मट्स की सरकार ने उन्हें भी जेल में बंद करने में ही अपनी सुरक्षा समझी। इस अग्निपरीक्षा में गाँधी–दम्पति सफल हुए। सत्याग्रह के सेनानी और उनकी पत्नी की यह एक असाधारण विजय थी। जीवन का एक अध्याय अफ्रीका में ही पूरा हो गया।

सात्विकता और सादगी ***बा*** के जीवन की बहुत बड़ी निधि थी। गाँधीजी के भारत लौटने पर ***बा*** को विकट–से–विकट और संघर्षपूर्ण परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। गाँधीजी ने चम्पारन–सत्याग्रह के समय देहात के किसानों को धैर्य देने और देहातों की सफ़ाई आदि की व्यवस्था करने का काम ***बा*** को दिया। श्रीमती कस्तूरबाने घर–घर जाकर चम्पारन के दीन–हीन और निर्धनता के कारण मलिन रहने वाली स्त्रियों को सफ़ाई से रहने तथा प्रतिदिन नहाते रहने की सीख दी।

कस्तूरबा संयम और धैर्य की सजीव प्रतिमा थीं। उन्होंने अपने शिष्ट और मधुर व्यवहार से गाँधीजी की महत्ता–मन्दिर के कपाट खोल दिये। गाँधी–दम्पति का जीवन अत्यन्त पवित्र और प्रेमपूर्ण था। सन् 1906 ई. में महात्माजी ने ब्रह्मचर्य–व्रत ले लिया, इस समय ***बा*** की अवस्था पैंतीस साल की थी। उन्होंने एक साध्वी और सती पत्नी की तरह वासनाओं का त्याग कर गाँधी जी के लिये एक आदर्श महापुरुष बनने का मार्ग परिष्कृत कर दिया। गाँधीजी ने एक स्थल पर लिखा है– 'जिस दिन से ब्रह्मचर्य का आरम्भ हुआ, हमारी स्वतन्त्रता भी आरम्भ हो गयी। मेरी पत्नी स्वामी और पतित्व के नियन्त्रण से मुक्त हो गयी; मैं भी उस तृष्णाकी दासता से मुक्त हो गया, जिसे वह शान्त करने के लिये विवश थी। मेरे लिये पत्नी के रूप में जितना आकर्षण कस्तूरबा में था, उतना किसी और के प्रति नहीं रहा। मैं अपनी पत्नी के प्रति पतिरूप में अत्यन्त अनुरक्त था।' कस्तूरबा महात्माजी के लिये सांसारिक प्रेम से बहुत ऊपर वस्तु बन गयी थीं।

साबरमती और सेवाग्राम के आश्रमवासियों के लिये तो वे साक्षात् देवी थीं। वे सच्चे अर्थ में उनकी माता थीं और दिन–रात एक राजरानी की तरह अपने गृहसाम्राज्य की व्यवस्था में तल्लीन रहती थीं। आश्रम की देख–रेख के साथ–ही–साथ वे पतिद्वारा सत्याग्रह–संग्राम छेड़े जाने पर गाँव–गाँव में घूम–घूमकर गरीब और असहाय देहातियों में जीवन भरती थीं। एक बार गाँधी जी के गिरफ्तार हो जाने पर कस्तूरबाने सच्ची सहधर्मिणी के समान पति का अनुगमन कर तीन आदेश दिये–सब स्त्री–पुरुष विदेशी कपड़े पहनना छोड़ दें; सब स्त्रियाँ चरखा चलाना और सूत कातना राष्ट्रिय कर्तव्य समझें; व्यापारी विदेशी कपड़े खरीदना बंद कर दें। कर्नल लिडल हार्टने एक स्थल पर लिखा है, 'हिन्दुस्तान में जाने पर हमें श्वेत

खादी वस्त्र में परिवेष्टित इससे अधिक दर्शनीय वस्तु न मिलेगी जो प्रथम कोटि की गृहिणी के रूप में सेवाग्राम में निवास करती है और आश्रमवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति में लगी रहती है।'

महात्मा गाँधी की ही तरह कस्तूरबा ने भारत के स्वाधीनता–आन्दोलन में बार–बार सहयोग दिया था। यद्यपि सन् 1921 ई. में सत्याग्रह और असहयोग की लड़ाई छिड़ने पर वे जेल नहीं गयीं, फिर भी आन्दोलन को सफल बनाने में वे भारतीय महिलाओं में सबसे आगे थीं। ***बा*** के घरेलू प्रयोग और राजनीतिक क्रिया–कलाप भारत और विश्व के लिये कल्याणकारी सिद्ध हुए। बारदोली सत्याग्रह में गाँधीजी के पकड़ लिये जाने पर ***बा*** ने अपने वीरोचित गुणों का परिचय दिया। उनके प्रयत्न से दीन–हीन किसानों का साहस बढ़ता गया। गुजरात के किसान बाको साक्षात् जगदम्बा समझते थे।

सन् 1933 ई. से 43 ई. तक बा का जीवन सेवाग्राम के तपोवन में बहता हुआ स्रोत–सा था। सन् 1939 ई. में द्वितीय विश्व–युद्ध छिड़ने पर गाँधी जी ने विदेशियों से स्वाधीनता की माँग की। गोरी सरकार के कान बहरे हो गये, महात्मा जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह–आन्दोलन का नेतृत्व किया, उनकी पत्नी ने इस शुभकार्य में पर्याप्त सहायता दी। सन् बयालीस ई. के नौ अगस्त को महात्मा गाँधी और उनके अनुयायी पकड़ लिये गये। पति की अनुपस्थिति में उसी दिन शाम को शिवाजी–पार्क में बा ने व्याख्यान देने का निश्चय किया; परंतु उन्हें पकड़कर आगाखाँ–महल में भेज दिया गया। इस बार जेल के बदले महल में ही जाना पड़ा। इस विशाल राजप्रासाद में वे एक क्षण के लिये भी पतिसेवा से विमुख न हुई। कालान्तरमें गाँधी जी के दाहिना हाथ महादेव भाई की मृत्यु और बापू के इक्कीस दिनों के उपवास से बा का हृदय जर्जर हो उठा। हृदयरोग का दौरा फिर आरम्भ हो गया। धीरे–धीरे गुर्दों ने काम करना छोड़ दिया और निमोनिया के आकस्मिक आक्रमण ने उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय कर दी।

22 फरवरी 1944 बा का अन्तिम दिन था। शिवरात्रि की पवित्र तिथि थी। मृत्यु अपनी काली भुजाओं से आलिंगन करने के लिये दौड़ पड़ी, मानो उसे भी अमर होने की साध–सी लग गयी थी। भगवान् सूर्य विदा ले चुके थे। संध्या विष उगलती आ पहुँची। बा बापू की गोद में विश्राम कर रही थीं। घड़ी ने टिक–टिक साढ़े सात बजा दिये, ***बा*** ने आँखें मूँद लीं। अन्तिम यात्रा का दृश्य अत्यन्त हृदयविदारक था।..... दूसरे दिन अन्तिम–संस्कार के पूर्व ***बा*** को स्नान कराया गया, गाँधीजी के हाथ के कते सूत्र की साड़ी में शव लपेट दिया गया। तुलसी की कण्ठी गले में पहना दी गयी। माथे पर चन्दन तथा कुंकुम लेप किया गया। शव के निकट ही, ऊँ और स्वास्तिक बनाये गये। बापू ने कहा, ''बा गरीब की पत्नी थीं, सूखे चन्दन की लकड़ी गरीब आदमी कहाँ से लायेगा?' इस पर जेल का अध्यक्ष बोल उठा कि 'मेरे पास है।' गाँधीजी ने कहा, 'आप सरकार हैं, सरकार की वस्तु लेने में मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है।' अग्नि–संस्कार के समय डेढ़ सौ सगे–सम्बन्धी उपस्थित थे। गाँधी जी के कहने पर उनके छोटे पुत्र देवदास ने दाह–संस्कार किया। उन्होंने तीन बार परिक्रमा की और फिर 'गोविन्द–गोविन्द' की ध्वनि में आग प्रज्वलित हो उठी। गाँधीजी आँसू न रोक सके। उन्हें शाल से आँसू पोंछते देखा गया। जीवन–संगिनी का वियोग उनके लिये असह्य हो उठा। सब लोगों के चले जाने पर चारपाई पर लेटे हुए बापू ने कहा था, '***बा*** के स्नेहशील जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। मैं अवश्य चाहता था कि ***बा*** मेरे सामने ही चली जायँ; परंतु वे मेरे जीवन का अविभाज्य अंग थीं। उनकी मृत्यु से मेरे जीवन में जो सूनापन पैदा हुआ है, वह कभी पूरा नहीं हो सकेगा।' हिन्दूधर्म में आस्था रखने वाली बा की इच्छानुसार उनकी अस्थियाँ प्रयागराज त्रिवेणी पहुँचायी गयीं।

कस्तूरबा एक श्रद्धालु पत्नी और स्नेहमयी माता थीं। ***महामना मालवीयजी*** ने समवेदना प्रकट करते हुए कहा था– 'ईश्वर को धन्यवाद है कि वे सौभाग्यवती होकर गयीं, जिस पद को पाने के लिये भारतीय महिलाएँ प्रार्थना किया करती हैं।'

मौत की भी मौत

जो ईश्वर का भक्त होता है, उसका स्वामी ईश्वर होता है। उसपर मौत का अधिकार नहीं होता। अनधिकार चेष्टा करने से मौत की भी मौत हो जाती है।

गोदावरी के तटपर 'श्वेत' नामक एक ब्राह्मण व्यक्ति रहते थे। उनका सब समय निरन्तर साम्ब सदाशिव की पूजा में व्यतीत होता था। वे अतिथियों को शिव समझकर उनका भली-भाँति आदर-सत्कार किया करते थे। उनका शेष समय भगवान् के ध्यान में बीतता था। उनकी आयु पूरी हो चुकी थी, किंतु उन्हें इस बात का ज्ञान न था। उन्हें न रोग था न शोक, इसलिये आयु पूरी हो चुकी है, इसका आभास नहीं हुआ। उनका सारा ध्यान शिव में केन्द्रित था। यमदूत समय से उन्हें लेने आये, परंतु वे उनके घर में प्रवेश नहीं कर पाते थे। चित्रगुप्त ने मृत्यु से पूछा- 'मृत्युदेव! श्वेत अबतक यहाँ क्यों नहीं आया?तुम्हारे दूत भी नहीं आये।' यह सुनकर मृत्यु को श्वेत पर बहुत क्रोध आया। वे स्वयं उन्हें लेने दौड़े। गृह के द्वार पर यमदूत भय से काँपते दिखायी पड़े। उन्होंने मृत्यु से कहा- 'नाथ! हम क्या करें?श्वेत तो शिव के द्वारा सुरक्षित है। उसे तो हम देख भी नहीं पा रहे हैं, उसके पास पहुँचना तो अत्यन्त कठिन है।'

दूतों की बात सुनकर मौत का क्रोध और भभक उठा। वे झट ब्राह्मण के घर में प्रवेश कर गये। ब्राह्मण देवता को यह पता न था कि कहाँ क्या हो रहा है? मृत्युदेव को झपटते देखकर भैरव बाबा ने कहा- 'मृत्युदेव! आप लौट जाइये।' किंतु मृत्युदेव ने उनकी बात को अनसुनी कर श्वेत पर फंदा डाल दिया। भक्त पर मृत्यु का यह आक्रमण भैरव बाबा को सहन न हुआ। उन्होंने मृत्यु पर डंडे से प्रहार किया। मृत्युदेव वहीं ठंडे हो गये। यमदूत भागकर यमराज के पास पहुँचे। वे डरके मारे थर-थर काँप रहे थे। मृत्युकी मृत्यु सुनकर यमराज को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने हाथ में यमदण्ड ले लिया और अपनी सेना के साथ श्वेत के पास पहुँच गये।

वहाँ ***भगवान् शंकर*** के पार्षद पहले से ही



खड़े थे। ***सेनापति कार्तिकेय*** के शक्ति-अस्त्र से सेनासहित ***यमराज*** की भी मृत्यु हो गयी। यह अपूर्व समाचार सुनकर ***भगवान् सूर्य*** देवताओं के साथ ***ब्रह्मा*** के पास पहुँचे और ब्रह्मा सबके साथ घटनास्थल पर आये। देवताओं ने भगवान् शंकर की स्तुति की और कहा- 'भगवान्! यमराज सूर्य के पुत्र हैं। ये लोकपाल हैं। इन्होंने कोई अपराध या पाप नहीं किया है, अत: इनका वध नहीं होना चाहिये। इन्हें जीवित कर दें, नहीं तो अव्यवस्था हो जायगी। ***भगवन्!*** आपसे की हुई प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं होती।'

भगवान् आशुतोष ने कहा- 'मैं भी व्यवस्था के पक्ष में हूँ। वेद की एक व्यवस्था है कि जो मेरे अथवा भगवान् विष्णु के भक्त हैं, उनके स्वामी स्वयं हम लोग होते हैं। मृत्यु का उन पर कोई अधिकार नहीं होता।' यमराज के लिये यह व्यवस्था की गयी है कि वे भक्तों को अनुचरों के साथ प्रणाम करें।'

इसके बाद भगवान् आशुतोष ने नन्दी के द्वारा गौतमी गंगा (गोदावरी)- का जल मरे हुए लोगों पर छिड़कवाया। तत्क्षण सब-के-सब स्वस्थ होकर उठ खड़े हुए। (ब्रह्मपुराण से)

वेदों में वर्णित कृषि व्यवसाय

–पुरुषोत्तम शर्मा

कृषि–कर्म :

वैदिक आर्य कृषि पर आधारित थे। आज की ही भाँति तब भी कृषि–कार्य को बड़ा महत्त्व दिया जाता था। ऋग्वेद में उल्लिखित 'कृष्टि' शब्द से समस्त आर्यजनों के कृषक होने का प्रमाण मिलता है। कृषि को अपनाना तब आर्यत्व एवं श्रेष्ठत्व की पहचान थी। समाज के सभी वर्गों के लोग प्राणरक्षिका एवं जीवनदायिनी धरती के प्रति आदर–सम्मान का भाव रखते थे।

वैदिक जन–जीवन कृषि पर अवलम्बित होने के कारण वेदों तथा वैदिक साहित्य में धरती के प्रति बड़े श्रद्धाभाव से उद्‌गार प्रकट किये गये हैं। ऋग्वेद की एक ऋचा में कहा गया है कि 'यह विशाल धरती हमारी माता है' (माता पृथिवी महीयम्)। इसी प्रकार 'पृथिवी मेरी माता और मैं उसका पुत्र हूँ' (माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:), अथर्ववेद की यह मन्त्र आज भी धरती के प्रति भारतीयों का असीम प्रेमभाव का द्योतन करता है। धरती के प्रति वैदिकों के मातृत्व का यह पुनीत श्रद्धाभाव अनेक कारणों से है। उन कारणों में से एक कारण मानवता का आधार है।

वैदिक आर्यों के कृषि–प्रेम के अनेक उदाहरण वेदों में देखने को मिलते हैं। वैदिक कवियों ने 'खेती करो' (कृषिमित् कृषष्व–ऋग्वेद) यह अभियान चलाकर समाज को कृषि की ओर प्रेरित किया।

कृषि के विभिन्न रूप और सिंचाई :

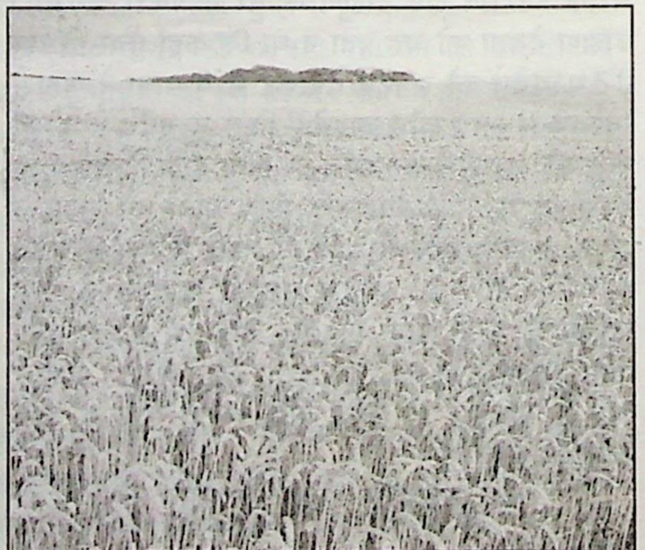
ऋग्वेद में कृषि योग्य भूमि के अनेक रूपों का वर्णन हुआ है। ऋग्वेद और अथर्ववेद आदि के अनेक स्थलों पर कृषि योग्य भूमि का 'उर्वरा' या 'क्षेत्र' कहा गया है और उसमें खाद (शकन् या करीष) का उपयोग करने तथा सिंचाई (खनित्र) की व्यवस्था का निर्देश किया गया है।

ऋग्वेद में उपजाऊ (अप्नवती) भूमि तथा बंजर (आर्तना) भूमि का भी उल्लेख किया गया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, ऋग्वेद और अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि उस समय कृषि की सिंचाई के लिए समुचित व्यवस्था थी। नदी और कूप दोनों से सिंचाई की जाती थी। ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर 'अवत' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिससे प्राकृत स्रोतों के विपरीत, कृत्रिम रूप में बनाये गये कूपों (खन्) का अर्थ किया गया है। ऐसे कूपों को ढाँक कर व्यवस्थित रूप में रखा जाता था वे सदा जल से परिपूर्ण रहते थे उनसे पत्थर के पहिये (चक्र) से पानी निकाला जाता था। इन पहियों में एक फीता अर्थात बेल्ट लगा रहता था जिसमें पात्र (कोश) सन्नद्द रहता था। पानी को खींचकर लकड़ी की बाल्टियों में संग्रह किया जाता था। कृषि को अधिकाधिक उपजाऊ बनाने के लिए सिंचाई के अतिरिक्त खाद का भी उत्तम प्रबन्ध था।

उपजाऊ कृषि योग्य भूमि के अतिरिक्त बंजर या अनुपजाऊ भूमि की अलग पहचान थी। ऋग्वेद अथर्ववेद और 'शतपथ ब्राह्मण' में 'खिल' या 'खिल्प' शब्दों से ऐसी बंजर भूमि या चरागाह योग्य भूमि का उल्लेख हुआ है, जो कृषित भूमि के बीच स्थित होती थी।

कृषि के साधन :

वेदों तथा वैदिक साहित्य में स्पष्ट एवं व्यापक रूप से यह भी देखने को मिलता है कि आज की भाँति तब भी कृषि–कार्य के लिए विभिन्न साधनों का उपयोग होता था। आर्य जीवन में कृषि कार्य की उपयोगिता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है



कि उसके लिए कृषि–कार्य से सम्बन्ध जोताई–बोवाई, हल, बैल, जुआढ़, हँसिया, गाड़ी, नाद, गोशाला, प्रस्थर, कुठार और लौहदात्र (वसूला) आदि विभिन्न प्रकार की सामग्री उपयोग में लाई जाती थी।

कृषि की जोताई–बोवाई करने सम्बन्धी अनेक उल्लेख वेदों तथा वैदिक साहित्य में प्रचुर रूप में विद्यमान हैं। ऋग्वेद के एक मंत्र में कृषि को जोतने और उसके लिए बैलों का उपयोग करने का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद आदि में जोत कर बोए हुए बीज और उससे उत्पन्न अन्न को 'यवकृत्' तथा 'सस्य' कहा गया है।

ऋग्वेद अथर्ववेद 'तैत्तिरीय संहिता' 'निरुक्त' और 'आपस्तम्ब सूत्र' आदि में हल (लांगल) के अनेक प्रकारों का उल्लेख हुआ है।

ऋग्वेद अथर्ववेद 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' और 'वाजसनेयि संहिता' में हल को 'सीर' कहा गया है। उसके खींचने के लिए छह, आठ, बारह या चौबीस बैलों को जोता जाता था।

'शतपथ ब्राह्मण' में जोतना, बोना, काटना, दवाई करके अन्न अलग करना (कृषन्तः, वपन्तः, लुनन्तः, मृणन्तः) आदि विभिन्न कृषि–क्रियाओं का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। इसी ब्राह्मण–ग्रन्थ में फसल को हँसिया (दात्र, सृणि) से काटे जाने, उसे गट्ठरी में बाँधे जाने (वर्ष) और अन्न को 'अन्नागार' में रखने आदि अनेक कार्यों का भी उल्लेख हुआ है।

अथर्ववेद में 'अन्नागार' को 'शाला' और गृहस्वामी को 'शालापति' कहा गया है। अथर्ववेद के एक अन्य सन्दर्भ में अन्न को चलनी (तितउ) और सूप (शूर्प–छाज) से साफ करने का भी उल्लेख हुआ है।

अन्न के प्रकार :

प्रजा का आधार अन्न है (अन्न वै विशः) 'शतपथ ब्राह्मण' के इस वाक्य और उक्त सन्दर्भों से स्पष्ट होता है कि अन्नदातृ कृषि के प्रति वैदिकों का असीम अनुराग था और कृषि–कार्य के लिए वे विभिन्न साधनों को उपयोग में लाते थे। विभिन्न ग्रन्थों में अन्नों की तालिका दी हुई है, जिनसे कि तत्कालीन अन्नों का पता चलता है। 'वाजसनेयि संहिता' में ब्रीहि (चावल), यव (जौ), मुद्ग, माष, तिल, अणु, खल्व, गोधूम (गेहूँ), नीवार, प्रियंगु, मसूर और श्यामक का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में कृषि (ग्राम्योणि) अन्न के दस प्रकार बताये गये हैं, जिनके नाम हैं : (1) चावल (ब्रीहि), (2) जौ (यवाः), (3) तिल (तिलाः), (4) माष (माषाः), (5) सरसों, (6) राई कोटि के धान्य (अणु–प्रियंगवः), (7) ज्वार (गोधूमाः), (8) मसूर (मसूराः), (9) खल और (10) कुलए।

ऋग्वेद और अथर्ववेद तथा वैदिक साहित्य के ग्रन्थों से वैदिक युग में धान की खेती का व्यापक रूप में प्रचलन होने का पता चलता है। 'तैत्तिरीय संहिता' में काले और श्वेत चावलों की श्रेणियों का उल्लेख हुआ है।

ऋग्वेद में घी–मिश्रित (घृतवन्तः) मीठी रोटी के लिए 'अनूप' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'शतपथ ब्राह्मण' में चावलों (ब्रीहि) की बनी या जौ (यव) की बनी रोटी का भी उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद से विदित होता है कि वैदिक आर्यों के खेत जौ से परिपूर्ण होते थे। जौ को भूना भी जाता और और उनका सत्तू भी बनाया जाता था। सत्तू को ऋग्वेद में देवान्न कहा गया है। इसलिए उसे दान में भी दिया जाता था। 'तैत्तिरीय संहिता के अनुसार जौ की खेती ग्रीष्म ऋतु में बोने का उल्लेख है। सत्तू के सूप का ऋग्वेद आदि में उल्लेख हुआ है। यज्ञ के समय कृषि देव पूषन् का यह विशेष भोज्य हुआ करता था। यह सूप जौ (उपवाक) के अतिरिक्त तिल (तीर्य) का भी बनाया जाता था, 'वाजसनेयि संहिता' तथा अथर्ववेद में इसका उल्लेख हुआ है।

खाद्यान्नों में गेहूँ का प्रमुख स्थान है। 'मैत्रायणी संहिता' वाजसनेयि संहिता' 'शतपथ ब्राह्मण' और 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में 'गोधूम' का गेहूँ के अर्थ में बहुवचन में प्रयोग हुआ है।

तिल और माष अथर्ववेद 'तैत्तिरीय संहिता' 'मैत्रायणी संहिता' 'वाजसनेयि संहिता' शतपथ ब्राह्मण' आदि अनेक ग्रन्थों में अन्नों में परिगणित है।

वैदिक युग के अन्नों में ईख (इक्षु) का भी अथर्ववेद 'मैत्रायणी संहिता' और 'वाजसनेयि संहिता' आदि में उल्लेख हुआ है। इन सन्दर्भों से यह स्पष्ट नहीं होता है कि ईख की खेती होती थी या वह स्वयं ठगता था।

भूमि स्वामित्व, उत्तराधिकार और अविभाजन :

भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व, उसका उत्तराधिकार और उसके अविभाजन सम्बन्धी निर्देशों तथा नियमों से ज्ञात होत है कि वैदिक युग में उसका कितना अधिक महत्त्व था। ऋग्वेद के एक मन्त्र से ज्ञात होता है कि खेतों की तब नाप–जोख होती थी। इस आधार से कृषि पर व्यक्तिगत स्वामित्व का पता चलता है।

'छान्दोग्य उपनिषद' में भूमि और घर को सम्पत्ति में परिगणित किया गया है। इससे भी भूमि पर वैयक्तिक प्रभुत्व का पता चलता है। बहुधा ऐसी अवस्था का पता चलता है कि एक परिवार के पास सम्मिलित भूमि रहती थी धर्मसूत्रों (गौतम बौधायन आपस्तम्ब) के बाद ही भूमि–सम्बन्धी उत्तराधिकार का नियम बना।

वैदिक युग में भूमि का कई दृष्टियों से महत्त्व था। ऋग्वेद में उपहारों या दान में दी जाने वाली वस्तुओं में केवल व्यक्तिगत सम्पत्ति की वस्तुओं की ही परिगणना की गई है; यथा गाय, अश्व, भैंस, ऊँट और अलंकार आदि।

दान या उपहार की बात तो दूर रही, 'शतपथ ब्राह्मण' के निर्देशानुसार गोत्र तथा परिवार के मुखिया की आज्ञा के बिना भूमि का विक्रय भी नहीं हो सकता था।

यद्यपि 'शतपथ ब्राह्मण' में ब्राह्मणों को भूमिदान देने का उल्लेख हुआ है; फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि विशेष सम्पत्ति होने के कारण भूमि को दिया जाना असाधारण परिस्थिति में ही सम्भव था। 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' को एक कथा में मनु द्वारा अपनी सम्पत्ति के विभाजन का उल्लेख हुआ है, जिसमें नाभानेदिष्ट को भूमि देने से वंचित किया गया है और उसकी पूर्ति पशुओं को देकर की गई है। इससे यह सिद्ध होता है कि सम्पत्ति के विभाजन एवं वितरण में तथा विनिमय में भूमि की अपेक्षा पशुओं को देने की व्यवस्था थी।

कुंडलियां

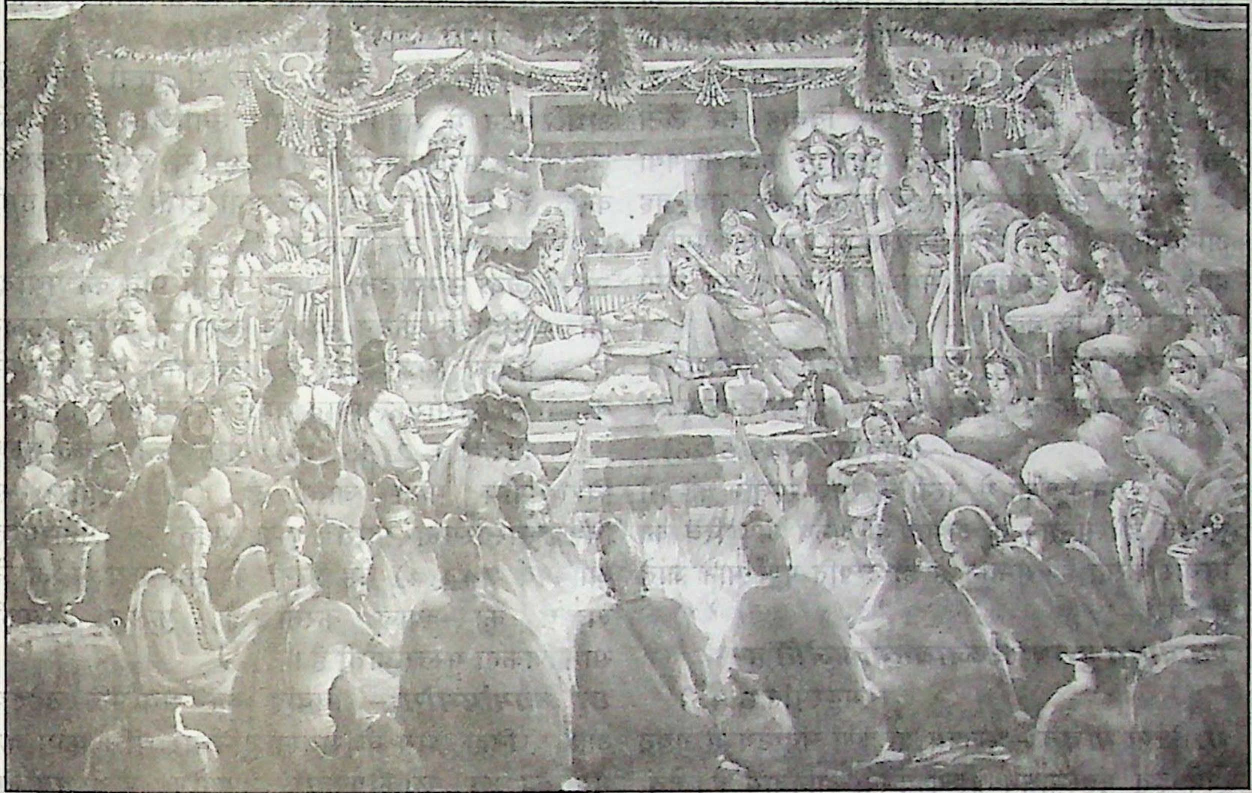
–पूरणचंद बड़गोत्रा

थ्होऐ रज्जयै घाऽनेई, फिरदियां लूर–लूर,
गंदे ढेर फरोलियै, खान गमां मजबूर।
खान गमां मजबूर, लड़न भुक्खै संग युद्ध,
स्वासें रचै सढ़ैंद, छुआहनै थनें च दुद्ध।
जां फाकें मजबूर, निं मुक्खें मुक्ख जरोऐ,
होऐ खाई संदोख, जो ढेर फरोली थ्होऐ।
लारें लाई लुकाइयै, उट्ठो–बेही करान,
आपूं काजै लग्गने, लग्गें काज छुड़ान।
लग्गें काज छुड़ान, हीखियें मेदें लाई,
नेता जाई जगान, सुत्तड़ें घर–घर जाई।
लारे, हेर जगान, भड़कदे आ'रें–आ'रें,
जित्तन लारे–बाज़, हारदे लग्गे लारें।
मौरीं अश्कैं जायेंगी, हिरख पराह्ले लान,
दुद्ध भरोचे छातियें, मूलै निं पलेआन।
मूलै निं पलेआन, तपाशन घर–घर गोके,
घरे भरोचे कौल, लान खौरे कित जोके।
बछराटें दा हक्क, खोहन, जायें दा मौरीं,
भरी बोतलें दुद्ध, चुंघान इशमी मौरीं।

छुट्टे चुक्की अड्डियां, कंड तनाई बद्ध,
होन उचरै ऊचड़ें, मुच्छी अद्धो–अद्ध।
मुच्छी अद्धो–अद्ध, मारदे कपटी बाजी,
ए अज्जै दी गल्ल, सरोखड़, सजरी–ताजी।
न्यांऽ, शुद्ध–निर्पक्ख, न, पाक्खी राखे खुट्टे,
उच्चे कद्ध नपान, बाजियां जित्तन छुट्टे।
बुद्ध अपनी बखला धन, मतेंगी लग्गन बद्ध,
पैह्ल परोखें देन तां, काज तरट्टी अद्ध।
काज तरट्टी अद्ध, छुहांदे फिरन ततूनें,
करन, नां करन देन, कुसैगी राम शतूनें।
झेइयें रौह्न व्यस्त, बसारी कम्मै दी सुध,
अश्कै करै शकार, अपना अपनी गै बुद्ध।
आए पुक्करदे सदा, भाइयें गी भाई,
पुत्तरें दी जोड़ी तां, मंगदी हर माई।
मंगदी हर माई, सुक्खनां सुक्खै सारै,
मढ़ी–मसीतें रोज, बडलै ठागर–दुआरै,
सीस बनी जां शाप, पुआड़ें जायें पाए,
जिं'दे दिक्खे खाब, मौरीं, ओ दिन नीं आए।

विवाह: बहुमुखी आवश्यकता

—मक्खन लाल



सामाजिक परिस्थितियां, व्यक्तिगत विवशताओं और वैराग्यमूलक प्रयोजनों के कारण अविवाहित रहने वाले व्यक्तियों की अपवादपरक श्रेणी छोड़ दें, तो विवाह समस्त मनुष्यों की प्राकृतिक कामना है। ऋग्वैदिक काल से येन-केन प्रकारेण व्यक्ति अपनी गृहस्थी के लिए सचेत रहता आया है। अथर्ववेद में पत्नी प्राप्ति हेतु देवेश्वर से प्रार्थना की गई है। हे शचीपत! आप व्यक्ति को दुष्कर्मो का दण्ड देने में सक्षम हो। आप महान् ऐश्वर्यो से युक्त एवं जगदीश्वर हो। आपका अंकुश सभी प्राणी स्वीकार करते हैं। आप पूजा को अत्यधिक धन देने वाले हो। आप ही वाणी, बुद्धि और कर्म के रक्षक हो। मुझे भी आप वीरों को उत्पन्न करने वाली पत्नी को दें। इस प्रकार की प्रार्थना इस मंत्र में की गई है:—

यस्तेऽङ्कुशो वसुदानो बृहन्निद्र हिरण्मयः।
तेन जनीयते जायां मह्यं धेहि शची पते।।

अथर्ववेद 6:12:3

प्रत्येक युवक—युवती के अर्न्तमन में अपने जीवन में काम के यौवनानुमोदित राग रंग सम्पादन हेतु सर्वोपयुक्त सहचर की अभिलाषा होती है।

क. गृहस्थाश्रम की गरिमा:— गृहस्थ आश्रम ही सब आश्रमों का आधार है। वेद शास्त्र, इतिहास और पुराणों में प्रमुख रूप से गृहस्थाश्रम के धर्म कर्त्तव्य निरूपित है। समस्त आचार्य गृहस्थाश्रम को केन्द्र बिन्दु मानते हैं। इसके निर्वाह में असमर्थ के लिए इतर आश्रमों की व्यवस्था है। वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों से लेकर आज तक इस आश्रम में प्रवेश सामाजिकता का मूल माना जाता है। यह आश्रम पत्नी के बिना असंभव है। पराशर के अनुसार पुरुष गृह का स्वामी होने से गृहस्थ नहीं होता, अपितु भार्यायुक्त होने पर ही गृहस्थ कहलाता है ('न गृहण गृहस्य स्याद् भार्यया कथ्यते गृही' बृहत्पाराशरमृति 6.09)।

ख. व्यक्तित्व की परिपूर्णता:— भारत में अर्द्धनारीश्वर की अवधारणा प्राचीन है। विवाह होने

पर अपूर्ण युवक और युवती पूर्णता प्राप्त करते है। 'अर्द्धांगिनी' विशेषण इस मन्तव्य को प्रकट करता है। इतिहास, पुराण–काव्य–शास्त्र विज्ञान इस सत्य को स्वीकारते हैं। विवाह के पूर्व व्यक्ति आधा है ('नरो हि गृहिणी हीनो अर्द्धदेह इति स्मृतः– स्कन्दपुराण 1.2. 3.62)। उसे उचित अवसर पर विवाह कर लेना चाहिए। यही सत्य है। भविष्य पुराण में कहा भी गया है कि पुरुष तब तक आधा ही होता है जब तक वह अविवाहित है परंतु विवाह पर्यन्त ही पुरुष को पूर्णत्व प्राप्त होता है। इसीलिए समय पर विवाह कर लेना चाहिए। जैसे कि कहा है–

पुमानर्द्धपुमांस्तावत् यावद् भार्या न विन्दति।
तस्मात्यथाक्रमं काले कुर्याद् दारपरिग्रहम्।।

(भविष्यपुराण 9.6.26)

मनु पूर्णता में पत्नी के साथ सन्तान को भी जोड़ते हैं। सन्तान के अभाव में पुरुष अपूर्णत्व का विचार करता है। सन्तान से ही दम्पति पूर्ण माने जाते हैं। जैसे–

एतावानेव पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह।

(मनुस्मृति 6.45)

ग. ऋण मोचनः–ऋणत्रय या ऋण चतुष्टय से मुक्त होने हेतु गृहस्थाश्रम ग्रहण करना अनिवार्य है। देव, पितर, मनुष्य और इतर प्राणियों के ऋणों का भार व्यक्ति पर रहता है। इसके परिशोधन हेतु विवाह अनिवार्य है (कादम्बरी 30 भा. 68.66) क्योंकि ऋण का अपाकरण छुटकारा न होने से व्यक्ति का सर्वप्रकार से पतन होता है (मनुस्मृति 6:35.38)। इसके अतिरिक्त पुत्रलाभ भी महत्वपूर्ण है। क्योंकि वही विभिन्न कर्मो, धर्मो का ध्वजावाहक होता है (गरुड़ पुराण 3.90)

घ. धर्म–कृत्य–सम्पादनः– यज्ञ–याग, देवार्चन, पितृश्राद्ध एवं अन्यान्य धार्मिक कृत्यों को पूर्ण करने के लिए धर्मपत्नी की अनिवार्यता है। पत्नीरहित पुरुष के कार्य व्यर्थ होते हैं। वह शुभ कर्म हेतु अप्रशस्त, दैवकर्म–पितृकर्म में अशुद्ध, श्राद्ध एवं गृह–वास्तु प्रतिष्ठा संदर्भित हवन में वर्जनीय है (भविष्य पुराण 2.2.21.14) कालिदास पत्नी को धार्मिक क्रियाओं का मूल कारण बतलाते हैं–

क्रियाणां खलु धर्म्याणां सपत्न्यो मूलकारणम्। (कुमार संभव 6:13) मार्कण्डेय पुराण के अनुसार, पत्नीविहीन व्यक्ति किसी धर्म का सम्पादन नहीं कर सकता (पत्न्या विना पुमानिज्याकर्म योग्ये न जायते– मार्क.पु. 67:23)।

ङ. अर्थोत्पादन– वैदिक काल से पत्नी, पति के अर्थोत्पादन में सहायिका और उपार्जित संपत्ति की व्यवस्थित संरक्षिका रही है। इसी से उसे गृहलक्ष्मी कहते हैं। निःसन्देह स्त्री गृहलक्ष्मी होती है और उसी से गृहस्थाश्रम में उन्नति होती है।

सामाजिक सम्पादनः– पत्नी अपने पति की मर्यादा और धर्मविहित जीवन व्यतीत करने में अनेक प्रकार से सहायिका सिद्ध होती है। वह पति को पाप से बचाती है (संसारकल्मषात् त्रातौ कलत्रमिति सा ततः – स्कंदपुराण 1. 2. 15. 19)। अतः पत्नी युक्त पुरुष विश्वसनीय माना जाता है ('यः सदारः स विश्वास्यस्तस्मात् दाराः परा गतिः'– महाभारत आदिपर्व 744.4) वह पत्नी के सान्निध्य में अपने शत्रुत्व का व्याज करता है, फलतः उसकी सामाजिकता मुखर होती है।

छ. कामोपभोगः– विवाह का सर्वोपरि उद्देश्य आहार, निद्रा, भय के सदृश दुर्निवार वृत्ति काम का मर्यादित व लोकोपकारी उपभोग है, क्योंकि अविवाहित अवस्था में दैहिक सम्पर्क निन्दित है, अतः धर्मानुमोदित कामसेवन की संस्तुति है। आचार्य वात्स्यायन के अनुसार चारों वर्णो के पुरुषों के लिए शास्त्रानुसार सवर्णा एवं अनन्यपूर्वा के साथ किया गया कामसेवन, पुत्रप्रद, यशस्कर व लोक प्राप्ति कारक होता है। ***काम का अतिशय सेवन भी शरीर में रोगों की बृद्धि करता है एवं अतिशय ब्रह्मचर्य भी नितान्त हानिकारक है। अतिशय ब्रह्मचर्य से भी प्रमेह, भेद, ग्रन्थिरोग एवं मन्द अग्नि जैसे विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं।***

अतिशयमैथुनस्य श्वास कासज्वरकारित्वम्।
अमैथुनस्य प्रमेहमेद ग्रन्थिरोगाग्निमान्द्यकारित्वम्।।

काम. सूत्र

इसके अतिरिक्त इस सुख का अनुभव करने पर ही इसका अतिक्रमण संभव है। अतः पत्नी रहित पुरुष के लिए पांचों कर्म इन्द्रियों को वश में रखना सम्भव नहीं है। उन्हें वश में रखने हेतु विवाह आवश्यक है।

रागसंवर्द्धन से प्रारूपित सान्निध्य को संयमित करने का विचार ही विवाह की अवधारणा का मूलाधार है। विवाह कामोद्वेग की मर्यादित सामाजिक अभिव्यक्ति है। विवाह से परिवार और परिवार से समाज की संरचना होती है। परिवार सामाजिक व्यवस्थाओं तथा आदर्शों की पाठशाला प्रयोगशाला और कार्यशाला है। विवाह परिवार की प्राथमिक प्रतिज्ञा है। अत एव इसका असंदिग्ध महत्व स्वत: सिद्ध है। विवाह से कामसंतुष्टि, मनोवैज्ञानिक स्थिरता, आर्थिक सुरक्षा, व्यक्तित्व संवर्द्धन, सामाजिक सातत्य व विकास तथा सांस्कृतिक मूल्यों एवं स्थापनाओं के संरक्षण हेतु समुचित अवसर उपस्थित होते हैं।

मोक्ष प्राप्ति:– भारतीय संस्कृति में सांसारिक प्रवृत्ति और आध्यात्मिक निवृत्ति का सुन्दर सामञ्जस्य है। विवाह सांसारिक सुख का विधान करता है और अनाशक्ति (पराशक्ति) का मार्ग प्रशस्त करता है। विषय सुख से परिचय के उपरांत ही उससे विरक्ति संभव है। अत: जो व्यक्ति मोक्ष में बाधक दाम्पत्य जीवन से परे रहते हैं, वे अतत्वदर्शी हैं। पत्नी पुरुष को पाप से रोकती है (नारदपुराण 2853.54)।

ये आवश्यकताएँ पुरुष और स्त्री दोनों के लिए समान महत्व की है। इनमें कोई विभाजन मूर्खतापूर्ण है। पुरुष के सदृश नारी के लिए धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष हेतु विवाह आवश्यक है। क्योंकि वैवाहिक उद्देश्यों में दोनों समान अभिलाषी है।

''धर्मप्रजासंपत्त्यर्थ यज्ञापत्यार्थ ब्रह्मदेवर्षितृप्त्यर्थ प्रजासहत्वकर्मभ्यो ददामि।' (वैखा. गृ सू 3.2)

अर्थात् धर्मसम्पादन, पुत्रोत्पादन, यज्ञनिष्पादन, ब्रह्म–देव ऋषि तर्पण आदि क्रियाओं में नर–नारी समभाव से सहयोग करते हैं।

''कागज़ की कश्ती''

–पवन कुमार

लोग कागज़ की कश्तियों पे सवार नज़र आते हैं,
ले डूबेंगे अपना ही घर बार नज़र आते हैं।
ज़िन्दगी कैसे मोड़ों से गुज़र रही है देखो,
कहीं मातम तो कहीं त्यौहार नज़र आते हैं।
लोग कागज़ की...
दोस्तों से खुलकर वे मिलते नहीं आजकल
दुश्मनी के मुझे आसार नज़र आते हैं।
लोग कागज़ की...
फूलों को भी पकड़ना न आता था जिन्हें,
उन हाथों में आज हथियार नज़र आते हैं।
लोग कागज़ की...
मेरी तबाही का कौन है जिम्मेवार न पूछो,
जवाब सोच, तो मुझे मेरे यार नज़र आते हैं,
लोग कागज़ की कश्तियों पे सवार नज़र आते है
ले डूबेंगे अपना ही घर–बार नज़र आते हैं।

सुनामी 2005

एक लहर बस एक लहर
मचाती गई इतना कहर
एक लहर...
इतनी लाशें फिर गली वहां
कि पानी वहां का बन गया ज़हर
एक लहर...
सारी झीलें वहां बन गई सागर
दरिया बन गई हर इक नहर।
एक लहर...
वो आशिया मिटते एक पल न लगा
जिन्हें बनते लगी कई शामो सहर।
एक लहर...
जो जाने बची इस तूफ़ान से लड़कर
उन्हें कहिए नाम–ए–हिम्मत
न कहिए खुदा की मेहर।
एक लहर बस एक लहर
मचाती गई इतना कहर।

डोगरा जन-जीवन च लोक-मैंत्तर परम्परा

–प्रो. चम्पा शर्मा

डुग्गर च आर्थक तंगी–तुरशौ बशक्क म्हेशां बनी रेही पर, धार्मक ते सांस्कृतक द्रिश्टी कन्नै भारत दा एह खूबसूरत इलाका बड़ा समरिद्ध ते रज्जे–पुज्जे दा रेहा ऐ। प्राचीन भारती संस्कृति दे अवशेष अज्ज बी डुग्गर दी लोक–संस्कृति च नजरी औंदे न। शायद इसकरी की जे पिछड़े दा ते पछेतरा लाका होने कारण इस पर बाह्‌रली तब्दीलिये दा असर–असरा बड़ा मता रेहा ऐ।

डोगरा लोके गी कुदरत दे कण–कण च परमेसरा दे बास च आस्था ऐ। एह्‌ आस्था ब'ट्टे चा बी परमातमा पैदा करी लैंदी ऐ। खंभे चा बी भगवान् भगतें दी आस्था कारण गै, प्रगट होई जंदेन की जे ईश्वर–भगती दी सुच्ची भावना दी कदर करने आह्‌लें दी भगती–सुख दी भावना बी पुखती होंदी ऐ। परमसेर च एह्‌ आस्था अभ्यास राहें उस्सै चाल्ली पक्की ते पुश्ट होंदी ऐ जियां निजम–अनुसार व्यायाम दे अभ्यास करने शरीर पुश्ट होंदा ऐ। इसकरियै मनुक्खी जीवन गी सुफल बनाने लेई मनुक्ख–मात्तर गी निंजिमानुसार प्रभु भगती दा अभ्यास करने दे लोड़ होंदी ऐ।

अज्जा दे विज्ञानी जुगा च बी डोगरे नदी–पूजा, प्हाड़–पूजा, रुक्ख–बूह्‌टें दी पूजा लेई समां कढ़दे न ते बड़ी शरधा कन्नै कुदम्ब, आंवली, बैरी दे बूहटे, जंड–करीर, अम्ब बनांड, बर्‌हैंकड़, पलाह्‌ आदि रूक्खें ते इन्दे पत्तरें दा धार्मक अनुष्ठानें च प्रयोग करदे न।

इत्थूंदे लोक–मानस दी सोच ऐ जे जीवन सिर्फ खट्टी–कमाइयै, खाई–समाहियै मरी–खपी जाने लेई नेई ऐ। एह्‌ दुर्लभ ते म्हतपूर्ण मनुक्खी जीवन ते उस नित्य, अति दयालु, दिब्ब, सर्वव्यापक, अन्तर्जानी दे घट–घट वासी ईश्वर गी प्राप्त करियै उस च लीन होई जाने लेई मिलदा ऐ। भगवान् दी किन्नी मेह्‌र ऐ जे इन्न साहें राहें मनुक्खा कन्नै अपना हर पलखिन दा नाता जोड़े दा ऐ। साह्‌ औंदा ऐ तां जीवन देई जंदा ऐ। चेतना देई जंदा ऐ। इस नाशवान शरीर कन्नै उस अनश्वर प्रभु दा संपर्क साह्‌ गै करांदे न। इस चाल्लीं साहें दे चमत्मकार दा नां गै जीवन ऐ। जिस दिन इनें अपैना छोड़ी देना–ओह्‌ दिन ते दिना दा खिनपल जीवन दा अखीर होना ऐ। योग विज्ञान मताबक मनुक्ख इक दिना च 21600 साह्‌ लौंदा ऐ। अर्थात् इक मैण्टा च 15–16 अग्निपुराण च गलाया गेदा ऐ जे मनुक्ख हर साह्‌ कन्नै भामें सुत्ता दा होऐ जां जागदा– 'हंसः' अर्थात् सोऽहं (शरीर च बराजमान ब्रह्म) रूप च ईश्वर–जाप करदा रौंह्‌दा ऐ। अपने–आप होने आह्‌ले इस जप दे इलावा बी परमानन्द दी प्राप्ति आस्तै मनुक्ख जतनशील रौंह्‌दा ऐ। इयै मनुक्खी जीवन दी बशोशता ऐ।

वैंद शास्त्रें च बडलै जागने थमा लेइयै रातीं सौने तगर ते जनम थमां मृतु तगर कीते जाने जोग कम्में–काजें दे करने दे विधि–विधान दा बी वर्णन मिलदा ऐ। ते नखिद्ध कर्म करने दी ठाक दी बी उल्लेख। इस लेख च बडलै उट्ठियै डोगरें आसेआ सभने शा पैह्‌ले कीते जाने आह्‌ले ईश्वर–सिमरन थमां लेइयै रातीं सौने तगर दे किश इक कम्में मौके खासकीरयै महिला–वर्ग पासेआ सैह्‌ज–सभाएं उच्चरे जाने आह्‌ले लोक मैन्तरें दा बवेचन दित्ता गेदा ऐ। इनें मैन्तरें चा गी किश पुरश बी बोलदे न पर जादातर महिला बिशनपतें आहला लेखा इनें मैंतरे गी बी सांभी रक्खे दा ऐ की जे उंदा नाभी केन्द्र गर्म धारणे कारण पुरशें दी बनिस्पत मता कमज़ोर होंदा ऐ। नाभीकेन्द्र डर–भैऽ दा केन्द्र होंदा ऐ। घर परिवार च कोई अनिश्ट नेई घटी जा इस चाल्लीं दे डर–भैऽ कारण ओह्‌ हर पल ईश्वर–सिमरने दी रूचि रखदियां न। दूआ उंदा हिरदें–चक्र जिसी योग दी आशा च अनाहत–चक्र गलाया जंदा ऐ–पुरशें दे मकाबले च मता क्रियाशील होंदा ऐ। एह्‌ सत्तें चक्रें चा चौथे नम्बरा पर ऐ ते इसदा सरबन्ध राग–हिरख, मोह्‌–लगाव कन्नै होंदा ऐ। स्त्री गी घर–परिवार गी बनाने, सुआरने खडेरने कन्नै मर्दे शा मता लगाव होंदा ऐ। शायद इसकरी ओह्‌ अपना ते अपने श्रम मता घर–परिवार दे जीबें दा कल्याण चाह्‌ने दी भावना कन्नै नित्त–नीम च मती आस्था रखदी ऐ।

प्रस्तुत न किश इक लोक मैन्तर परभाती बेले दे लोक–मैन्तर–
बडलै उट्ठियै अक्खीं मीटे दे गै, बछैने पर बैठे–बैठे गै मनोमन बड़ी शरधा–भगती कन्नै बंदन जोग शक्तियें गी नमस्कार कीता जंदा ऐ। नमस्कार करने दी प्रथा पीढ़ी–दर–पीढ़ी चली आई ऐ।

''थान्नै–मुकानै गी नमस्कार।
गऊ–ब्रैह्मण गी नमस्कार।
ज्ञानियें–ध्यानियें गी नमस्कार।
जोगियें–भोगियें गी नमस्कार।
नग्गर खेड़े गी नमस्कार।
राज–भाग गी नमस्कार।
राज–भाग दे बाल्ली गी नमस्कार।
आपो–अपने गुरु महाराज गी नमस्कार।
अपने–अपने माता पिता गी नमस्कार,
ते अखीर च
ब्रह्मा, विष्णु, शिव शक्ती
ते रक्खेआ करन महेश।''

लोकें दा विश्वास ऐ जे बडले दे ईश्वर–चिन्तन कन्नै दिन सखल्ला बीतदा ऐ। धर्म–कर्म च बाद्धा होंदा ऐ। अज्ञानी गी ज्ञान–लाभ होंदा ऐ। रोग–नेई लगदा। हर कम्मा च जित्त होंदी ऐ ते बिपदें–मसीबतें थमां मुक्ति मिलदी ऐ। डोगरे घरें च बिशनपते ते 'कमलनेत्र स्तोत्र' अक्सर सनोचदे न

दातन–बीड़ी सरबन्धी लोक–मैंतर

मुख शुद्धी दे बिजन जप–तप, पूजा–पाठ, मैन्तर–पाठ आदि निष्फल होंदा ऐ। इसकरियै मुख–शुद्धी आस्तै दातन–बीड़ी, दंद–मंजन आदि करने दा विधान ऐ। दातन करने लेई शास्तरें च दऊं दिशां– पूरब ते उत्तर पूरब (ईशान कोण) उचित गलाई गई दियां न। इंदे पास्सै मूंह कीरयै दातन–दनासा करने दी स्हेई विधि गलाई गेई दी ते इन्ना गै नेई दातुन कर दे बेल्लै हत्थ गोडें दे अंदरें रक्खने दा बी संकेत मिलदा ऐ। दातन दी लंबाइ (12, 9, 6, 4 औंगल) ते चड़ाई (चीची औंगली जिन्नी) दा बी उल्लेख मिलदा ऐ। दातन कीरयै उसी धोइयै दक्खनी–पच्छमी मेठा (नैर्ऋति) च सुट्टने दी विधि बखानी गेदी ऐ।

शायद इस्सै करी डोगरें दा एह् लोक मैन्तर बी दातनी गी बरतने दे परैन्त धोई–धूइयै दक्खन दिशा च रावण दी लैंका जाई बस्सने दा आदेश दिंदा ऐः–

''कीती दातन, चुक्की सैंशा,
जा बीड़ी रावण दी लैंका।
र'वेआं उसदै पास,
निं हल्लेआं निं झुल्लेआं,
उत्थै गै करेआं बास।''

शनान–पानी सरबंधी लोक मैन्तर

पच्छमी सभ्यता दा असर पौने करी नगरें–शैह्रे च बस्सने आह्ले केई डोगरे बी बडले दे शनान गी मती म्हत्ता नेई दिंदे होन ते दिनै च कुसै बेल्लै बी शरीर दी सफाई लेई सुवधा मताबक न्हाई लैंदे होन पर सांस्कृतक परम्परा कन्नै बज्झे दे मते होर लोक ते ग्राएं–पिंडें च लगभग सबलोक गै अज्ज बी बड्डै बेल्लै उट्ठियै नित्तकर्म करदे होई शनान पानी करने दे अभ्यासी न। ओह् जानदे न जे नवें द्वारें थमां दिनें–राती मल–मैल कड्ढने आह्ले शरीरा गी बड्लै अट्ठियै चंगी चल्लीं शुद्ध करना लाजमी ऐ। एह्दै परैन्त गै मनुक्ख जप–तप, पूजा–पाठ आदि कम्में दे जोग बनदा ऐ। उत्तम शनान तीर्थे दे जलै च बखानेआ गेदा। शायद इस्सै करी शनान करने आह्ला डोगरा कुसै बी थाह्रा पर न्हौंदे–न्हौंदे ऐ भारत दियें पबित्तर नदियें। गंगा जमना, सरसुती, कृष्ण, काबेरी, गोमती, महानदी आदि।

धर्मशास्तरें च वर्णन मिलदा ऐ जे गंगा माता ने आक्खे दा ऐ– ''शनान करदे मौकै जित्थै कुतैबी कोई मेरा सिमरन करग, अऊं उत्थूं दे जलै च सामधाम जाई पुज्जड.।

रामचन्द्रें दा बेटड्ठा, सीता ने पालेआ।
संकट कट्ट मेरा में नां लैं तेरा।।

इस करियै बेह्ड़ै जा पचोआड़ शरीरा पर पानियै दे द'ऊं–चार लोटे सुरदे होई बी डोगरा नारी आखदी ऐ–

''गंगा जमना सरसुती।
छाली भरी समुन्दर दी पाप कहें हरि दुआर।।

दक्ष स्मृति च आक्खेआ गेदा ऐ जे बडलै शनान करने

आह्ले गी रूप-शलैपा, तेज-प्रताप, बल-उत्साह्, पबितरता, आयु, नरोईसेह्त लुब्बते-लालच थमां छुटकारा कच्चे मंदे सुखनें थमां मुक्ति तपोबल ते बुद्धि प्राप्त होंदी ऐ।

कृष्ण प्रभु तेरे दर्शन पाइयै,
भवसागर थमां मुक्ती थ्होई।''
न्हाई-घेइयै में गोडा नुआया,
श्रीकृष्ण प्रभु तुंदा दर्शन पाया।
न्हाई धोइयै अऊं चली घर।
अग्गुआं मिले साथी चार।
शिव, ब्रह्मा, विष्णु, कृष्णमुरार।।
न्हाई धोइर्य अऊं चढ़ी चबारै।
श्री कृष्ण मेरा काज सोआरै।।''

एह् लोक मैंतर परतियै चेता कराई जंदे न जे डोगरा जन-जीवन पर विष्णु दे राम ते कृष्ण वितारें दा खासा प्रभाव रेहा ऐ। 'राम' दा उल्लेख सिर्फ लोक गीतें दे सोहाग विधा पर जां 'कृष्ण देबालरूप दा वर्णन सिर्फ 'बिहाइयें' ते किशोर कृष्ण दा सिर्फ 'गुजरी' आदि शंगारक गीतें पर गै नेई ऐ बल्के लोक-पालक ते भवसागर तारक रूप लोक-मैंतरें च बी हरपल सिमरेआ जंदा ऐ।

न्हाई-धोइयै पूरबै बक्खी मूंह करियै सूरजै गी जलांजली दिंदे होई जेह्ड़ा लोकमंत्र पढ़ेआ जंदा ऐ, ओह् ऐ:-

''सूरजै लरजां छंडियां, चन्द्रमै लेआ भाऽ
मार्कण्डे दी आरबला मेरे परोआरे गी जा।''

शनान-पानी करी लैने मगरा सनातन धर्म च देव-पूजा दा विधान दस्सेआ गेदा ऐ। देवी-देवता दी पूजा अर्चना लेई फुल्ल ते तुलसी दल कठेरने दी लोड़ होंदी ऐ। स्कन्द पुराण च आक्खेआ गेदा ऐ जे धन्न होंदे न ओह् हत्थ जेह्ड़े पूजा कर्म लेई तुलसी-दल खुआंद्दे न (तुलसीं ये विचिन्वन्ति धन्यास्ते करपल्लव 1:1)

डोगरी च फुल्ल खुआंटने ते तुलसीदल त्रोड़ने लेई प्रचल्लत लोक-मैंत्तर न:-

1. ''फुल्ला बै बनवासिया,
बन बिच तेरा बास।
नेई हल्लेआं, नेई झुल्लेआं
ते नेई देआं शराप।
श्रीकृष्ण जी ने भेजेआ,
तां आई अऊं तेरै पास।''

''तुलसी मा, नेई हल्लेआं नेई भुल्लेआं
नां गै होएआं दुआस।
श्री रामचन्द्रें दी क्हल्ली
तुलसीदल लैनें गी चल्ली।

पूजा-पाठ थमां फारग होइयै महिला वर्ग रसोई दी जम्मेवारी गी खुशी-खुशी नमाने गितै रसोई पासै रूख करने शा पैहले आखदा ऐ:-

बड्डे बेल्लै उट्ठियै, राम कोला पुच्छियै राम दी रसोई जन्नीं अच्छी गल्ल होई

न्हौने कशा पैहले गै चौका-भांडा देइयै अंदर-बाहर ते रसोई-घर साफ-सुथरा करी लैता गेदा होंदा ऐ जिसदी पुश्री करदा ऐ- एह् लोक-मैंतर:-

चौका मांडा राम दा सो लेआ में पाई।
कीड़ी-काढा नेईं मरै पाप नेईं लग्गै कोई।

एह् लोक-मंत्र कीड़ी-मकोड़ी दी अनजाने च होने आह्ली हत्या दे पाप लेई खिमा-याचना दे भाव गी बी उजागर करदा ऐ। अन्न शरीर दी पालमा-परोस करदा ऐ। मनुक्खा दा शरीरक ते मानसक विकास अन्न कन्नै गै होंदा ऐ। इस्सै कारण भारती संस्कृति च अन्न गी परमेसर करियै आक्खेआ जंदा ऐ। अन्न पकांदे-खंदे बेल्लै इस प्रभु दी किरपा गी चेतै कीता जंदा ऐ। डुग्गर च भोजन बनाने दा कम्म आमतौर पर महिलां गै करदियां न। एह् बक्खरी गल्ल ऐ जे जग्गे-धाम्में ते ब्याह्-कारजें जनहे मौकें पर मते लोकें लेई भोजन बनाने आह्ले 'सेआन' मर्द होंदे न पर रोजै दी रसोई महिलां गै बनांदियां न। शैल भोजन बनाइयै घरे दे जीबें दी नरोई सेहत बनाने आह्ली नारी गी 'नारायणी' मिथेआ जंदा ऐ। अन्न भोजन देने आहली देवी दा 'अन्नपूर्णा' नां प्रसिद्ध ऐ। डोगरा नारी सलूना चाढ़दे होई उस च लून पांदे होई जेह्दा लोक-मैंतर उच्चरदी ऐ, ओह् इयां ऐ-राम दी रसोई, जा लून पूरा होई।''

दीआ बत्ती बालने सरबन्धी लोक मैन्तर

घरा दे निक्क–मुट्टे धंधकड़े करदे–करांदे, आए–गे–दे गी पुच्छदे–भालदे दिन बतीत होई जंदा ऐ ते दीआ–बत्ती बालने दी बारी आई जंदी ऐ। जोकी घर–घर बिजली पुज्जी गेई दी ऐ। संञा बिजली दा सुच्च दबांद सार सिर खट्टदे गै आप–मुहारे एह् लोक–मंत्र बलोई जंदा ऐ:–

''दीआ बलै, बिघन टलै
लच्छमीं दा बास होऐ।
कलच्छमीं दा नास होऐ।''

आवगमन शा

मुक्ति पाने दी कामना कन्नै किश लोक दीआ बालियै बाह्रली कंधै उधर धरी दिंदे न तां जे औने–जाने आह्लें गी न्हेरे च ठेडा–ठोकर नेईं लग्गे। जिया अज्जबी संज पौंदे गै गेट लाइटा बाली दिती जंदिया न इस मौके दा लोकमंत्र ऐ–

''गास दीआ बालेआ,
निकल जीआ सखालेआ।''

रातीं सौन मौके दे लोक–मन्तर

रातीं सौन लगदे बेल्लै डोगरा–परिवारें च निक्कें–बड्डें जीबें आसेआ किश मंत्रें दा उच्चारण करने दी पिरत चिरै चली थमां आई ऐ तां जे नींदर सुखै दी मिलै। कोई मंदा सुखना नेईं आवै कोई डर–त्राह् नेईं लग्गै। अज्ज बेशक्क मते–सारे लोक इस लोकमंत्र गी भुल्ली–बिस्सरी गेदे होन पर केई म्हातड़–तम्हात ड़. अजें बी बिच्चें–बारें गै सेही इसगी चेता करी लैंदे न। एह् मंत्र इक शाम मते रूपें च मिलदा ऐ। जियां–

1. हरि ओम्।
दाहिनीं, मोहिनीं, सती
तिस्सरा भार्या।
तासां स्मरणमात्रेण
दुर्स्वपनं नश्यति वेदनम्।
2. अहल्या, तारा, मन्दोदरी,
कुन्ती ते द्रौवदी।
एते पंजकन्या पठेत् रात्रीं।
मंदसुखना मादि्रशरीं।''

पैह्ले लोकमैंतर च 'दाहिनी' शब्द दी बरतून दक्षायणी आस्तै, 'मोहिनी' शब्द विष्णु पत्नी लच्छमी लेई ते 'सती' शब्द 'अहल्या' आस्तै होई दी ऐ।

दूए लोकमैंतर च गौतम रिशी दी पत्नी सती अहल्या, बाली–पत्नी तारा, रावण पत्नी मंदोदरी, कुन्ती ते द्रौपदी गी ब्याह्ता होने पर कन्याएं दी संज्ञा दिंदे होई गलाया गेदा ऐ जे इनें पंजे कन्याएं दा नां सिमरियै सौने पर रातीं कोई कच्चा–मंदा सुखना नेईं औंदा

एह् लौह्के–लौह्के लोकमैंत्तर डोगरा जन–जीवन दी सरल, संस्कारी, ईश्वर–भजनी धार्मिक–जीवन पद्धति दा परिचे दिंदे न। पूजा–पाठ मगरा परमात्मा गी मत्था टेकदे बोलेआ जाने आह्ले लोकमैंतर कन्नै लेख गी इत्थै समाप्त कीता जंदा ऐ:–

''सर्बस्स दा भला, जगत् दा भला।
कुसै पिच्छै साढ़ा बी भला होऐ।''



We want to lead mankind to the place where there is neither the Vedas, nor the Bible, nor the Koran; yet this has to be done by harmonising the Vedas, the Bible and the Koran.

Mankind ought to be taught that religions are but the varied expressions of THE RELIGION, which is Oneness, so that each may choose the path that suits him best.

- Swami Vivekananda

जीवन जीने की कला

''निन्दक एकहु मति मिलै पापी मिलै हजार,
इक निन्दक के शीश पर लाख पाप का भार।''

—राकेश लंगर

गारूड़पुराण मे लिखा गया है कि परनिन्दा करने वाला व्यक्ति कुम्भीपाक नरक में जाता है, जहाँ यम उसे कई प्रकार की यातनाएँ देते है। परनिन्दा से समाज टूट जाता है परिवार टूट जाते हैं, रिश्ते टूट जाते हैं और दिलो में ऐसी दरार पड़ती है जो मरते दम तक नहीं टूटती, समाज रिश्तों से बनता है इन रिश्तों को पर निन्दा जैसी बिमारी से नहीं तोड़ना चाहिए। कोई भी मनुष्य सर्वगुण सम्पन्न नहीं होता, अत: किसी की निन्दा करने से पहले हमें यह सोचना चाहिए कि मुझ में क्या कमी है? किसी की निन्दा करने और सुनने में आनन्द तो आता है पर इसका अंत बुरा होता है। हम अपने बच्चे को सिगरेट शराब जैसी बुरी आदतें छोड़ने के लिए कहते हैं पर निन्दा जैसी आदत छोड़ने की प्रेरणा उसे कभी नहीं देते। परनिन्दा एक मीठे ज़हर की तरह है, जिसका सेवन करने में मज़ा तो आता है, पर धीरे–धीरे एक मनुष्य को समाज से दूर कर देती है। किसी की निन्दा करने से हमारे कई यज्ञों का पुण्य खत्म हो जाता है।

''अड़सठ तीरथ निन्दक न्हाई, देह पलोसै मैल न जाई।
छप्पन कोटि धरती फिरि आवे, तो भी निन्दक नरकहिं जाई।।

कई हज़ार तीर्थ करने से जो महातम हंमे मिलता है वह किसी की निन्दा करने से ख़त्म हो जाता है। अमृत को पाने के लिए देवताओं ने समुद्र मन्थन किया। प्रश्न यह उठता है कि अगर समुद्र में अमृत होता तो समुद्र का पानी खारा न होता, बल्कि मीठा होता। अरे मनुष्य! अगर अमृत ही ढूंढना है तो अपनी वाणी से मीठे शब्द का उच्चारण कर तभी तो तेरे मुख से अमृत बरसेगा। किसी की निन्दा करने से तुझे विष प्राप्त होगा न कि अमृत।

''तुम कभी भी किसी की निन्दा मत करो क्योंकि यह भक्तजनों का काम नहीं है, इससे हृदय मलिन होता है। स्व० सतपाल लंगर के शब्दों में ''ज़ुबान पर काबू रखो मीठे और प्यार भरे शब्द बोलो, निन्दा करने से तुम पाप के भागी बन रहे हो।''

हर व्यक्ति में कोई न कोई कमी होती है, किसी की निन्दा करने से पहले हमें यह सोचना चाहिए कि हम में कोई कमी तो नहीं है। प्रभु यीशु एक बार किसी शहर से गुज़र रहे थे तो उन्होंने देखा कि कई लोग एक औरत को पत्थर मार रहे थे, उस पर कई प्रकार के आरोप लगा रहे थे तो प्रभु यीशु ने कहा कि इस औरत को पहले पत्थर वह मारे जिसने कभी कोई पाप न किया हो, तब सभी लोग धीरे–धीरे वहां से हट गए। कहने का तात्पर्य यह है कि हम सब लोगों में कोई न कोई दोष है, फिर हम किसी के दोष क्यों बखान करते है।

आइए, अब हम इस बात का मंथन करें कि इस निन्दा नामक बुराई को इस समाज से कैसे दूर करें। हरिकीर्तन, सत्संग, प्रभु सिमरण, मीठे शब्द से ही हम इस बुराई से छुटकारा पा सकते हैं। वेदव्यास जी एक आर्दश पुरुष बनने का उपाय बताते हुए कहते है कि ''सदा मंगलमय वचन ही बोलें, सबके मंगल का ही चिन्तन करें, कल्याणमय महापुरुषों का ही संग करें और अमंगलकारी दुष्टो का साथ कभी न करें, निन्दा करने वाले व्यक्ति को अपने पास फटकने भी न दें। समय अमूल्य है, इसे निन्दा करके व्यर्थ न गवाएँ। हरि सुमिरण से हो इस बुराई से निजात पाई जा सकती है। सज्जनों की संगत से जीवन में सुख और शान्ति मिल सकती है। सत्संग यानि अच्छी संगत से मनुष्य काफ़ी उन्नति कर सकता है। मीठी वाणी से ही मनुष्य इस बुराई से निजात पा सकता है। आइए एक ऐसे समाज की कल्पना करें जिसमें निन्दा जैसी समाजिक बुराई का नामोनिशान न रहे ताकि एक स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण हो सके।

शीतल शब्द ही समाज को जोड़ते है। अगर द्रौपदी इतना न कहती कि ''अन्धे की सन्तान अन्धी ही होगी तो शायद महाभारत जैसा युद्ध ही न होता और कई योद्धा वीरगति को न प्राप्त होते। बल्कि द्रौपदी ऐसे भी कह सकती थी, ''भाई जी ज़रा सम्भल कर

"कुटिल वचन नहि बोलिये, शीतल बैन ले चीन्हि,
गंगा जल शीतल भयो परबत फोड़ा तीन्हि।।

चलिए नहीं तो आपको चोट भी लग सकती है।" कड़वी वाणी से चोट लग सकती है, जबकि मीठी वाणी से उस चोट के विपरीत दवा का काम करती है। सोचने का विषय यह है कि काले रंग की कोयल की कू—कू सभी सुनना चाहते है जबकि वैसा ही काले रंग का कौआ है पर लोग उसको घर की मुंडेर पर भी नहीं बोलने देते। इसी तरह साधु एवं सज्जन पुरुष की वाणी तो सभी सुनना चाहते हैं पर दुर्जनों के पास बैठना भी कोई पसंद नहीं करता। अगर कोई व्यक्ति ग़लत शब्द बोलता है तो सज्जन पुरुष का काम है कि उस व्यक्ति से नरमी से पेश आए क्योंकि आग को सदा पानी ही बुझा सकता है।

"खोद खाद धरती सहे, काट कूट बनराय,
कुटिल वचन साधू सहै, और से सहा न जाए।।"

मधुर शब्द हर व्यक्ति सुनना चाहता है जबकि कड़वी वाणी से हर कोई नफ़रत करता है। कड़वी वाणी से दुश्मन बनते हैं मित्र नहीं।

शब्दों से पूरा शब्दकोष भरा पड़ा है पर एक व्यक्ति को उन्हीं शब्दों को ढूंढना है जिनके प्रयोग से सुनने वाले का मन प्रसन्न हो जाए। जुबान से निकला हुआ शब्द वापिस नहीं आता। एक कीमती हीरा खरीदने के लिए तो हमें दाम देना पड़ता है पर शब्द के प्रयोग के लिए हमें कोई दाम नहीं देना पड़ता। अगर कोई कटु वाणी वाले व्यक्ति को कहेगा कि एक महीना वह कटु शब्दों का प्रयोग न करके मधुर शब्दों का प्रयोग करे, शुरू में तो उसे काफ़ी कठिन लगेगा पर थोड़ी देर पश्चात् उसे महसूस होगा कि मधुर वाणी ने तो उसका जीवन ही बदल दिया। अप शब्दों वाला व्यक्ति हमेशा तनाव में रहेगा और अपने लिए कई बिमारियों को न्यौता देगा।

"शब्द सम्हारे बोलिये, शब्द के हाथ न पाँव
एक शब्द औषिध करे एक शब्द करे घाव।।

कुछ नासमझ लोग ऐसे हैं, जो विचारकर नहीं बोलते। बस अपनी मनमानी से उलटा सीधा जो मुँह में आया बोलते ही जाते हैं, ऐसे लोग अपनी जीभ में कड़वे कठोर वचन रूपी तलवार बांधकर दूसरों की आत्मा को कष्ट देते रहते हैं, जिस शब्द के बोलने से किसी को कष्ट न हो वे ही शब्द हमे प्रयोग में लाने चाहिए। गंगा का शीतल जल ही कठोर पर्वत को चीर कर लोगो के पाप धोता है। विष से भरा साँप भी सुगंधित चन्दन पर लिपट कर मानो सुख का अनुभव करता है। विश्व में जब भी कोई युद्ध हुआ तो हमेशा कटु शब्दों का प्रयोग किया गया। परशुराम के क्रोध को भगवान् राम ने शीतल वचन बोल कर ही शांत किया था।

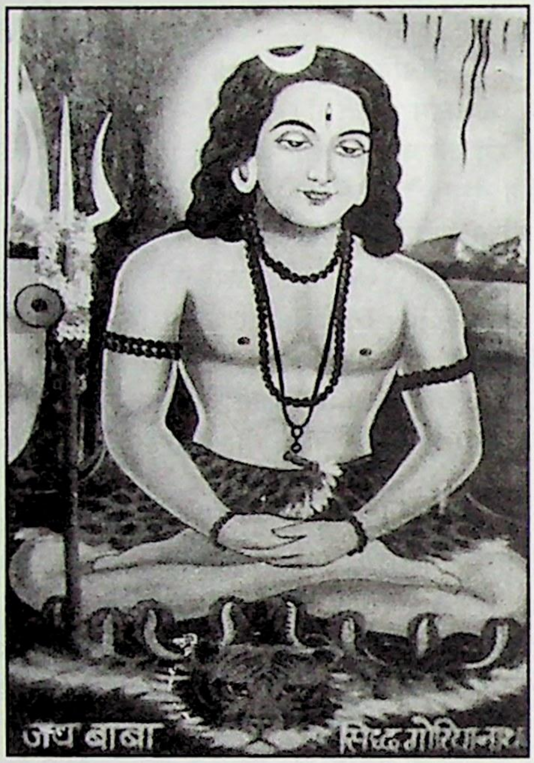
सज्जन पुरुष क्रोधी व्यक्ति के क्रोध को एक तूफ़ान की भांति समझते हैं उसके क्रोध आने पर सज्जन पुरुष मौन धारण कर लेते हैं। समुद्र पर बिजली गिर जाने पर समुद्र जल नहीं जाता। अविवेकी क्रोध द्वारा अपनी ही हानि करते हैं। शायद इस जीभ के बाहर बत्तीस दांत इसके दरबान हैं जोकि जुबान से कोई अपशब्द न निकले, इस लिए बनाए गए है। जिसने अपनी जीभ को वश में कर लिया उसने तो मानो समस्त विश्व को जीत लिया। जीभ की मीठी बोली में तो अमृत का बास है, यह बहुत ही सुखदायी है। शब्दों का चयन खुद करें। अतः यह आप पर है कि आपने उन शब्दों का चयन करना है जोकि फूल बरसाएंगे या फिर काँटे।

सहज तराजू आनि कै, सब रस देखा तोल।
सब रस माही जीभी रस, जु कोय जानै बोल।।

शुनःशेप और बिरपानाथ की कथाएं

—ओम गोस्वामी

ऋग्वेद में 'शुनः शेप' द्वारा की गई वरुण देवता की स्तुति उपलब्ध होती है। इसमें वृत उपलब्ध नहीं होता। किंतु, उपनिषद् युग आते–आते इस बारे में एक सशक्त कथानक निर्मित हो चुका था।



उपनिषद् कथा के अनुसार वरुण देवता ने राजा हरिश्चन्द्र को पुत्र रूप में रोहित दिया था। किंतु, इसमें यह शर्त थी कि वह अपना पुत्र उसे बलि के रूप में अर्पित करेगा।

रोहित का जन्म हुआ। वरुण ने हरिश्चंद्र को अनेक बार अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया। किंतु, हरिश्चन्द्र टालमटोल करते रहे। तब वरुण देव से चेतावनी मिल गई कि यदि वह पुत्र–बलि नहीं देगा तो उसका अनिष्ट होगा।

राजा हरिश्चन्द्र ने येन–केन–प्रकारेण वरुण को इस बात के लिए मना लिया कि यदि वह रोहित के स्थान पर किसी और मानव की बलि देगा तो वह उसे स्वीकार कर लेगा।

हरिश्चन्द्र ने रोहित को बुला कर धन देते हुए कहा कि वह सैनिकों का एक दल लेकर गांव–गांव में घूमे और बलि के निमित किसी ब्राह्मण बालक को खरीद लाए।

धन की पोटली लेकर रोहित निकल पड़ा। उसके कर्मचारियों ने जगह–जगह ढिंडोरा पीटा और मोल लेकर ब्राह्मण बालक बेचने की बात कही। अंततः ऐसा व्यक्ति मिल ही गया। अजीगर्त नामक ब्राह्मण ने भरपूर मूल्य वसूल करके अपने पुत्र शुनः शेप को बेच डाला। उसे लेकर रोहित राजधानी चला आया।

देवता को बलि देने के दिन राजा हरिश्चन्द्र ने अनेक ऋषि–मुनियों को न्यौता दिया। विश्वामित्र भी वहां मौजूद थे। रोहित के बदले जब शुनः शेप को वहां बलि के लिए लाया गया तो विश्वामित्र ने तुरंत कहा कि शुनः शेप जैसे निरपराध बालक की बलि देना उचित नहीं है। हरिश्चंद्र और विश्वामित्र में विवाद भड़क उठा। विश्वामित्र ने अपने तपोबल से वरुण देवता का आवाहन किया। शुनः शूप की अंगुली को चीरा देकर उसके रक्त की एक बूंद से उसे तृप्त किया।

शुनः शेप के प्राणों की रक्षा के उपरांत ऋषि विश्वामित्र ने उसे कहा कि वह अपने घर माता–पिता के पास चला जाए। शुनः शेप ने कहा कि वे उसका मोल प्राप्त करके उसके पुत्रत्व से वंचित हो चुके हैं। अतः उसके माता–पिता तो ऋषिवर ही हैं जिन्होंने उसे नया जीवन दिया है।

पुराण युग आते–आते उपनिषदों की यह कथा और भी रूप परिवर्तित कर लेती है। विश्वामित्र एक क्रुद्ध ऋषि के रूप में सामने आते हैं और राजा हरिश्चंद्र और रोहित नियति द्वारा पीड़ित पात्रों के रूप में चित्रित किए जाते हैं। शुनः शेप के पात्रत्व अथवा भूमिका का पटाक्षेप हो जाता है।

युग बदलते चलते हैं। पूर्व से उत्तर भारत में नाथपंथ का प्रबल आंदोलन चला। इसके मुख्य नियंता, विचारक, पथ–प्रदर्शक सब कुछ थे– गुरु गोरखनाथ। शुनः शेप की कथा पुनः जीवित होती है। शुनः शेप बिरपानाथ बनकर प्रकट होते हैं। अजीगर्त का स्थान गांव बीरपुर का लद्दा नामक ब्राह्मण ले लेता है। विश्वामित्र के स्थान पर गुरु

गोरखनाथ चले आते हैं।

शुनः शेप की बलि वरुण को चाहिए। माध्यम है राजा हरिश्चंद्र। जबकि ब्राह्मण बालक वीरू की बलि कुएं में जल का स्रोत रोके राक्षस को चाहिए।

यदि देवता की कथा वैदिक युग से उत्तर पौराणिक युग तक कुछ संकेत देती है तो वह यह कि जैसे इंद्र का महत्व घटते-घटते पूर्णतया लुप्त हो गया, उसी भांति वैदिक युग का महत्वपूर्ण देवता वरुण पौराणिक युग तक आते-आते एक साधारण देवता, इसके बाद मात्र जल-देवता और अंततः जल राक्षस के रूप में जन-मानस पर छवि अंकित करता है। जन-मानस द्वारा इस परिवर्तन के पीछे एक ठोस तार्थिकता है। नर-बलि का भूखा देवता नाथ-युग तक आते-आते जन-मानस की दृष्टि में देवता नहीं राक्षस मात्र रह जाता है।

डुग्गर में प्रचलित लोकगाथा में हरिश्चंद्र का स्थान लोकगायक की दृष्टि में बाहवे का राजा है और अन्यत्र धर्मी राजा। शुनः शेप और बिरपानाथ की कथा में समानता से कुछ प्रश्न स्वतः सामने उभर आते हैं:-

1. क्या यह मात्र संयोग है कि वैदिक युग के उपरांत उत्तर मध्ययुग में दुबारा एक वैसा ही कथानक घटित होता है।
2. अन्यथा ऐसा तो नहीं कि नाथ-पंथ के प्रसार-प्रचार में उसी पुरातन कथा को कल्पना के सांचे में नया स्वरूप प्रदान किया गया हो? क्या यह कथानक परंपरा से ग्रहण किया गया है?
3. क्या कारण है कि बिरपानाथ की यह कथा डोगरा प्रदेश तक सीमित है, जबकि अन्य नाथ-पंथियों यथा-भतृहरि, गोपीचंद, राजा रसालू की गाथाओं का प्रचलन व्यापक क्षेत्रों में है।

शुनः शेप की कथा में राजा हरिश्चंद्र पुत्र-मोह में रोहित की बलि वरुण देवता को नहीं दे पाता, इसलिए वह किसी अन्य की बलि का प्रबंध करता है।

बिरपानाथ की डोगरी लोकगाथा में भी राजा-रानी इस चिंता में निमग्न हैं कि वे निःसंतान हैं। सन्तान की चिंता में उन्होंने कुआं खुदवाया, किंतु उससे पानी न चला। राजा-रानी दोनों चिंतित हो उठे कि भाग्य में न तो पुत्र मिला न पुण्यः-

मंडी बैठे दा राजा झुरदा, मैहलें झूरै रानी।
पुत्तर साढ़े भागें निं लिखेआ,
पुन्नें बी लिखेआ नाई।

पुत्रेच्छा से खुदवाए कुएं में जल को राक्षस से मुक्त करवाने के लिए किसी कुलीन (ब्राह्मण) की बलि आवश्यक है। ब्राह्मण, काला या गंदुमी न होकर कक्का-भूरा अर्थात् शुद्ध कुल, शील गौर वर्ण का होना अभीष्ट है।

बिरपानाथ और कलालिन वाला प्रसंग कतिपय अन्य नाथपंथी गाथाओं का ''आर्केटाइप'' भी है। कुल्लू में प्रचलित लोकगाथा जो राजा भरथरी से संबंधित है में भरथरी विरपा से मिलने से पूर्व कलारिन से मधु का प्याला तलब करता है-

''एक प्यालो तू दें मधु माइये, नोगरी फिरू मतवाड़ो।
जो दमड़ी खर्चे मधु पीए, फोकटिए मधु नाहीं।''

बिरपानाथ का कलालिन से तकरार भी कुछ इसी तरह होता है। डोगरी गाथा-गायकों के अनुसार-

''अग्गें चरखा, पिच्छें पीढ़ा, बेहीं कलालन कत्तै।
बीरू ने जद मंगेआ मद प्याला,
कलालन खिड़-खिड़ हस्सै।
जो दम खर्चे सो मद पीयै, बाह्ज दमै मद नाईं।''

नाथपंथ के दो प्रमुख स्तंभ

-ओम गोस्वामी

मत्स्येंद्र नाथः मत्स्येंद्र नाथ जिन्हें जम्मू प्रांत में 'मछेन्दरनाथ' कहा जाता है, वे गोरखनाथ जी के गुरु थे। उनकी साधना पद्धति बौद्ध तांत्रिक आचार से प्रभावित थी। उनकी जन्म-भूमि के विषय में अनेक कथाएं प्रचलित हैं। उनके अनेक नाम भी प्रचलित हैं यथा-विष्णु शर्मा, गौडीश देव, पिप्पलीश देव, भैरवानन्द नाथ, वीरानंददेव, इन्द्रानन्द देव और मत्स्येंद्र नाथ। उनकी योग साधना कौलाचार तंत्र पर

आश्रित है। वे शिवोपासना के लिए शक्ति का आश्रय आवश्यक मानते हैं। भगवान् शिव से उन्होंने महाज्ञान रूपी वरदान प्राप्त किया था। शिवपुत्र कार्तिकेय ने जब कुलागम शास्त्र को गर्हित मानकर समुद्र में फेंक दिया तो इस शास्त्र का उद्धार करने हेतु मत्स्येंद्रनाथ मच्छ का रूप धारण करके समुद्र में चले गए। दैवयोग से वहां भगवान् शिव देवी पार्वती के आग्रह पर उन्हें नौका में बैठा कर महाज्ञान सुना रहे थे। इस बीच देवी पार्वती को नींद आ गई। नौका के नीचे छिपे मत्स्येंद्रनाथ इस महाज्ञान का श्रवण कर रहे थे, वे पार्वती के सो जाने पर हुंकार भरते रहे। नींद टूटने पर देवी ने प्रभु से कहा कि उन्होंने महाज्ञान तो पुरा सुना ही नहीं। सर्वज्ञ भगवान् शिव सारी वार्ता जान गए कि नौका के नीचे मत्स्य रूप में छिपे मत्स्येंद्र ही उनके कथा कहने पर हुंकारा भर रहे थे। उन्होंने मत्स्येंद्रनाथ को श्राप दिया कि आप कुछ अवधि के लिए योग के महाज्ञान को भूल जाओगे।

विद्वान् लोग इस बात पर एकमत हैं कि मत्स्येंद्रनाथ ने कामाख्या देश में तप करके शिवज्ञान प्राप्त किया था। योग–पंथ का समुचित संधान करके उन्होंने अनेक चमत्कारिक उपलब्धियां प्राप्त कीं। भगवान् शिव का महाज्ञान विस्मृत होने का समय आया तो वे योग मार्ग के यम–नियम भूल कर भोग–वासना में लिप्त हो गए। तब गोरखनाथ की कृष्णपाद नामक योगी से भेंट हुई तो उन्हें पता चला कि मत्स्येंद्रनाथ कदलीवन में कमला और मंगला नामक रानियों के संग महाज्ञान को भूल कर भोगविलास में व्यस्त हैं। उधर कृष्णपाद के गुरु जालंधर नाथ को बंगदेश के राजा गोपीचंद ने मिट्टी में गड़वा रखा था। गोरखनाथ तथा कृष्णपाद अपने–अपने गुरु को मुक्ति दिलाने के लिए अपनी–अपनी दिशा में चल पड़े। गुरु गोरखनाथ को पता चला कि महलों में योगी या साधु के प्रवेश की आज्ञा नहीं है। अत: महलों में जा रही एक नर्तकी के संग स्वयं भी नर्तकी का रूप धारण करके वे भीतर चले गए। वहां उन्होंने निनाद किया– ''जाग मछेन्द्र गोरख आया।'' इसके उपरांत उन्होंने मत्स्येंद्रनाथ को विभ्रम त्याग कर मोह–माया का विच्छेद करने का निवेदन किया। इससे सुषुप्त महाज्ञान जाग्रत हो उठा। उन्होंने पुन: ज्ञान का प्रकाश प्राप्त किया। उन्होंने शिव और शक्ति के समन्वय का मार्ग प्रशस्त किया। गोरखनाथ ने सुधि शिष्य का दायित्व निबाहते हुए गुरु मत्स्येंद्रनाथ को सोलह हज़ार दासियों द्वारा सेवित कमला और मंगला नामक महारानियों के मोह–पाश से मुक्त करवाया।

पूरण भगत चौरंगीनाथ मत्स्येंद्रनाथ की महिमा का बखान करके उन्हें पूजनीय मानते हैं। नाथ सिद्ध चरितामृत नामक ग्रंथ में उल्लेख है कि उन्हें योग ज्ञान का उपदेश स्वयं योगेश्वर मत्स्येंद्रनाथ जी ने किया था। कहा जाता है कि वे गोरखनाथ जी के गुरु–भाई थे। पूरण भगत अर्थात् चौरंगीनाथ जी द्वारा विरचित पुस्तक ''प्राण सांकली'' में मछेंदरनाथ को संबुद्धिदाता के रूप में बखान किया गया है।

गुरु गोरखनाथ: जम्मू की धरती देवी– देवताओं की धरती है। यहां पर हिंदू धर्म के विभिन्न पंथों और धाराओं की उज्जवल प्रथाएं सदियों से धर्म–प्राण लोगों को सद्जीवन की प्रेरणा देती आई हैं। मध्ययुग के आरंभिक दौर में इस धरा पर नाथ–पंथ की सुदृढ़ छाप पड़ी थी। आज भी इस क्षेत्र की विभिन्न जातियां एवं उपजातियां गुरु गोरखनाथ तथा गुरु मछेन्द्रनाथ की उपासना करती देखी जाती हैं। कहा जाता है कि नाथ–पंथ के आदि प्रवर्तक आदि नाथ हैं। भगवान् शिव को ***आदि नाथ*** भी कहा जाता है। नाथ–पंथ को नया आधार देने में गुरु गोरखनाथ जी ने मुख्य भूमिका निभाई थी। उन्होंने नाथ–पंथ की संस्था का प्रसार पूरे भारत में किया। उनसे दीक्षा प्राप्त करके उनके शिष्यों ने नाथ–पंथ को सक्रिय रखा। गोरखनाथ को कालांतर में उनके अनुयायियों ने भगवान् शिव के अवतार के रूप में भी प्रचारित किया। नाम–योग का मुख्य ध्येय है–भौतिक ताप के कष्ट को काटना। इसके लिए योग साधना के सिद्धांतों द्वारा विषय–भोगों की लिप्सा से दूर रहना। गोरख जी का कथन है–

''मरो वै मरो जोगी, मरण है मीठा,
तिस मरणी मरो, जिस मरणी गोरख मरी दीठा।''

जीवात्मा की आध्यात्मिक उन्नति हेतु नाथ

योग संप्रदाय सांसारिक भोगों से अलिप्तता की दशा को मरण मानता है। यह मरण इन्द्रियगत सुखों पर वश प्राप्त करने की स्थिति है।

तमाम भारत भूमि पर गोरखनाथ और उनके गुरु योगीन्द्र मछेन्द्र (मत्स्येन्द्र) नाथ के विषय में अनेक अलौकिक कथाएं प्रचलित हैं। जम्मू प्रांत की गुग्गा-गाथा में वे एक दिव्य साधु के रूप में विद्यमान हैं तो कालीवीर विषयक कथाओं में वे एक ऋषि के रूप में चित्रित हुए हैं। कुएं में बलि देने के लिए ले जाए जा रहे बिरपानाथ का वे उद्धार करते हैं तो अन्यत्र हाथ-पांव काटे जाने पर कुएं में गिराए गए पूरण भगत को बाहर निकाल कर वे नाथ-पंथ में दीक्षित करते हैं। नाथ संप्रदाय में उनका पद काफ़ी ऊंचा है। गोरखनाथ जी के विषय में अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं। कहा जाता है कि वे महामंत्र के प्रसाद स्वरूप ''बड़व'' नामक देश में प्रकट हुए थे। एक अन्य ग्रंथ में उन्हें चोल देश का निवासी कहा जाता है। उनके पिता का नाम माधव और गुरु का नाम महाप्रकाश था। यह ''माधव'' भगवान् विष्णु और ''महाप्रकाश'' ज्ञान की उच्च अवस्था का प्रतीक हो सकते हैं। एक अन्य कथा के अनुसार वे कुलीन ब्राह्मण थे। नाथ सिद्ध चरितामृत नामक ग्रंथ में एक जनश्रुति यों है- ''अयोध्या के निकट भगवती सरयू के तट से थोड़ी दूरी पर जयश्री अथवा जायस नामक स्थान में अलख जगाते हुए और भिक्षाटन करते समय महायोगी मत्स्येंद्रनाथ की दृष्टि एक निस्संतान ब्राह्मणी पर पड़ी। उसे उन्होंने अपनी झोली से विभूति दी और आशीर्वाद दिया कि तुम पुत्रवती होगी। लोक-लाज के कारण ब्राह्मणी ने विभूति सूखे गोबर के ढेर में छोड़ दी। ठीक बारह वर्ष के उपरांत मत्स्येंद्र नाथ जायस जाए। ब्राह्मणी ने उनके पूछने पर सही बात कह दी। वे सूखे गोबर के ढेर के समीप गए। बारह वर्षों में विभूति ने बारह वर्ष के तेजपूर्ण दिव्य बालक का आकार धारण कर लिया था। वे बालक को अपने साथ ले आए और उसका नाम गोरक्षनाथ रखा तथा अपने प्रिय शिष्य के रूप में उन्हें योग-मंत्र की दीक्षा दी। उन्होंने योग-मार्ग में ऐसा नाम कमाया कि अपने गुरु को भी भवबंधनों में उभारने में सहायक हुए।

गुरु गोरखनाथ की महत्ता:- जम्मू प्रांत में नाथपंथ से संबंधित लोकगाथाओं में गुरु गोरखनाथ एक दिव्य शक्ति के रूप में दर्शाए गए हैं। अधिकांश लोक-देवों का संबंध किसी न किसी रूप में गुरु गोरखनाथ से रहा है। इस कारण से विभिन्न बिरादरियां अपने कुलदेव के साथ-साथ गुरु गोरखनाथ को भी अवश्य ही पूजती हैं। गुरु गोरखनाथ के इसी महत्त्व के कारण आज के दौर में भी उनके मंदिर बन रहे हैं। 1 मई 2005 ई. को जम्मू के गोरखनगर स्थित शिव मंदिर में महायोगी गुरु गोरखनाथ की मूर्ति की स्थापना की गई। कीर्तन-भजन एवं भजन अनुष्ठान के मध्य यह स्थापना हुई।

इसी प्रकार सिद्ध-स्वांखा के सिद्ध गोरिया देवस्थान पर 3 से 6 मार्च 2006 ई. के दौरान तीन दिन चले अनुष्ठानों में गुरु गोरखनाथ के साथ-साथ कालीवीर, राजा मंडलीक और माता मल्ल की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की गई।

जम्मू नगर के सुप्रसिद्ध मंदिर ''जांभेश्वर'' गुफ़ा परिसर में गुरु गोरखनाथ जी साक्षात् प्रतिष्ठित हैं। वहां उनका धूना कई सदियों से जाग्रत चला आता है। इसी तरह सुद्ध महादेव के शिव मंदिर में भी बावा गोरखनाथ का धूना सदियों से चला आता है।

जम्मू प्रांत के प्रतिष्ठित नाथ-पंथी मठों में ''सिद्ध-स्वांखा'' की गद्दी अति महत्वपूर्ण है। यहां एक बड़े भवन में गुरु गोरखनाथ जी की अति आकर्षक एवं बड़ी मूर्ति स्थापित की गई है। इसकी विधिवत् पूजा की जाती है।

धूने की विशेषता यह होती है कि यह जहां कभी भी हो, जिस किसी भी नाथ के मंदिर या थान पर हो वहां की विभूति को श्रद्धालु भगत चुटकी भर खा लेते हैं और माथे पर इसका टीका लगा लेते हैं। इस विभूति को रोग और कष्ट हरने की क्षमता से युक्त माना जाता है। जब भी विभूति का सेवन किया जाता है भक्त लोग ''जय बावा गोरखनाथ'' शब्द का उच्चारण कर लेते हैं। विभूति को भाग्यवर्धक माना जाता है।

अनोखी मुलाक़ात

-विश्वनाथ मुखर्जी



परमहंस रामकृष्णाजी काशी-दर्शन के लिए आये। उनके साथ रानी रासमणि के दामाद मथुरानाथ विश्वास भी थे। दरअसल उन दिनों रामकृष्णजी को अधिकतर समाधि लग जाती थी। उसके लिए उनकी रक्षा और देखरेख करने के लिए लोगों की ज़रूरत पड़ती थी। रानी रासमणि का आदेश था कि ठाकुर को कहीं किसी बात का कष्ट न हो। दिन-रात इनकी सुरक्षा पर ध्यान दिया जाय। बिहार के कई तीर्थों के दर्शन करने के बाद वे काशी आये।

दशाश्वमेध घाट पर आते ही उनकी आध्यात्मिक शक्ति को एक अज्ञात शक्ति आकर्षित करने लगी। उन्हें समझने में देर नहीं लगी कि कोई दिव्य आत्मा उन्हें आकर्षित कर रही है। मंत्रमुग्ध भाव से वे पैदल ही घाट के किनारे-किनारे पूर्व दिशा की ओर बढ़ते चले गये।

गर्मी का मौसम था। गर्म तीखी हवा के कारण साथ चलने वाले लोग परेशान थे, पर कौन विरोध करता। परमहंसजी इस समय महाराजाधिराज थे और मथुरानाथ उनके सेवक। परमहंसजी के पैरों में जैसे पंख लग गये थे। वे नंगे पैर खूब तेजी से चल रहे थे। साथ के लोग जूते पहने हुए थे।

तभी लोगों ने एक अद्‌भुत दृश्य देखा। सामने से एक नंग-धड़ंग साधु दोनों हाथ फैलाये चला आ रहा है। उनके पीछे कुछ लोग आ रहे हैं। पास आते ही दोनों सन्त आपस में लिपट गये जैसे वनवास के पश्चात श्रीराम-भरत का मिलन हुआ था। दोनों ही एक दूसरे को मौन होकर देखते रहे। उस दृश्य की छवि का वर्णन करना कठिन है।

परमहंसजी ने मथुरानाथ तथा साथ आये लोगों से कहा- ''आप लोग चुपचाप क्यों खड़े हैं?आप लोगों का यह अहोभाग्य है जो साक्षात् विश्वनाथ का दर्शन कर रहे हैं। ले-लो चरण-स्पर्श करके अपना इहकाल-परकाल, इहलोक और परलोक सुधार लो। फिर मौका नहीं मिलेगा।''

परमहंस जी के इस आह्वान को सुनते ही सभी लोग तैलंग स्वामी की चरण-रज लेकर सिर से लगाने लगे। मथुरानाथ भी समझ गये कि स्वामी जी अवश्य ही उच्चकोटि के योगी हैं अन्यथा परमहंसजी ऐसा न कहते।

एकाएक तैलंग स्वामी के साथ आये कुछ लोग तेज़ी से घाट के ऊपर दौड़कर चढ़ने लगे। इधर तैलंग स्वामी सभी लोगों के साथ अपने आसन पर आये और बड़े आदर के साथ परमहंसजी को पास बैठाया। दोनों ही एक दूसरे को आदर की दृष्टि से देख रहे थे। तभी जो लोग ऊपर दौड़कर गये थे, वे जलपान की सामग्री लेकर आये।

परमहंसजी ने अपने साथ आये लोगों से कहा- ''बाबा का प्रसाद ले लो। फिर यह अवसर नहीं मिलेगा।''

लोगों को प्रसाद ग्रहण करते देख परमहंसजी पास बैठे मथुरानाथ की ओर देखते हुए बोले- ''बाबा को हम भी खिलायेंगे। देखें, बाबा कितना खाते हैं। काशी आकर अगर साक्षात् विश्वनाथ को भोग नहीं दिया तो यात्रा सफल नहीं होगी।''

वहाँ से वापस लौटते समय परमहंसजी अपने आप से कहने लगे- ''आज बहुत दिनों बाद एक पूर्ण कलायुक्त संत का मैंने दर्शन किया। आहा, कितने सुन्दर लक्षण हैं। माँ काली के सेवक हैं न। माँ जगदम्बा की जिस पर कृपा होगी, उसे किसी बात की चिन्ता नहीं सतायेगी।''

मथुरा बाबू ने विस्मय से पूछा- ''तैलंग स्वामी जी काली के भक्त हैं, यह आपको कैसे मालूम हुआ?आप तो उनके आश्रम के भीतर गये नहीं।''

परमहंसजी ने कहा- ''मां काली के भक्तों

में जितने लक्षण होते हैं, वे सब स्वामी जी के अंगों में मैंने देखे। उन लक्षणों को देखकर विश्वास हुआ। इन आँखों से कुछ छिपा नहीं रहता। बाबा असाधारण योगी हैं। इस बात की जानकारी गले लगते ही मालूम हो गयी। पिछले तीन सौ वर्षों में इस तरह का योगी कोई नहीं हुआ। इन्हें अपने शरीर का कोई ज्ञान नहीं है। जिस बालू पर तुम लोग जूते पहनकर चलने में कष्ट का अनुभव कर रहे थे, उस पर वे लेटे हुए थे। इसी से उनका असाधारणत्व समझ सकते हो?''

किसी भक्त ने प्रश्न किया– ''मगर वे नंगे क्यों रहते हैं। इतने लोग उनका दर्शन करने आते हैं। कुछ न सही कौपीन पहन लेना चाहिए।''

परमहंसजी ने कहा– ''तैलंग स्वामी जैसे महात्मा वैसे नहीं होते। न जाने कितनी साधना–तपस्या कर चुके हैं। इसके लिए तपस्या चाहिए, तब उनकी तरह बना जा सकता है। केवल नंगे रहने से कहीं तैलंग स्वामी बना जा सकता है?नंगा होने से आनन्द लाभ नहीं होगा। यह अभ्यास करने से होता है। तैलंग स्वामी अपने जीवन में कितनी साधना कर चुके हैं, इसे तुम लोग क्या समझोगे?उनके प्रति जो लोग श्रद्धा रखते हैं, भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं, उनका कल्याण होगा ही। तैलंग स्वामी सबसे पार। शरीर साधारण मनुष्य की तरह है, पर कर्म मनुष्य की तरह नहीं है। शिवत्व प्राप्त कर चुके हैं। विश्वनाथ और तैलंग स्वामी एक हैं, अभेद हैं।''

इस घटना के बाद से अक्सर परमहंसजी तैलंग स्वामी के आश्रम में आते और दोनों व्यक्ति मौन भाषा में चुपचाप बातें करते। इसे वहां बैठे लोग समझ नहीं पाते थे। एक दिन घाट पर उपस्थित लोगों ने एक विचित्र दृश्य देखा। परमहंसजी के साथ काफ़ी लोग चल रहे हैं और सभी के सिर पर तथा हाथों में बड़े–बड़े बर्तन हैं। यह तैलंग स्वामी के आश्रम की ओर जा रहा है। कौतुहलवश कुछ लोग साथ–साथ चलने लगे।

तैलंग स्वामी घाट पर लेटे हुए थे। परमहंस को काफ़िले के साथ आते देख वे उठकर खड़े हो गये। पास आकर परमहंसजी ने कहा– ''आज अपने विश्वनाथ को खीर खिलाऊँगा। देखूँ, मेरे बाबा कितना खाते हैं?''

परमहंसजी की बातें सुनकर तैलंग स्वामी मुस्करा उठे। वे पालथी मारकर बैठ गये। दनादन कटोरी में खीर उंडेलकर परमहंसजी उन्हें खीर खिलाने लगे। देखते ही देखते बीस सेर खीर तैलंग स्वामी खा गये।

उपस्थित लोग यह दृश्य देखकर चकित रह गये। तैलंग स्वामी के निकटस्थ लोगों को आश्चर्य नहीं हुआ। वे यह बात जानते थे कि श्रद्धा–प्रेम से कोई वस्तु चाहे जितनी मात्रा में दी जाय, बाबा खा लेते हैं। कभी–कभी एक दो सप्ताह भोजन नहीं करते।

शरणागत-रक्षा

उस समय दिल्ली के सिंहासन पर अलाउद्दीन बादशाह था। बादशाह का एक प्यारा सरदार मुहम्मदशाह था। मुहम्मदशाह पर बादशाह की बड़ी कृपा थी और इसी से वह बादशाह का मुँहलगा हो गया था। एक दिन बातें करते समय हँसी में मुहम्मदशाह ने कोई ऐसी बात कह दी कि बादशाह क्रोध से लाल हो उठा। उसने मुहम्मदशाह को फाँसी पर चढ़ा देने की आज्ञा दे दी।

बादशाह की आज्ञा सुनकर मुहम्मदशाह के तो प्राण सूख गये। किसी प्रकार वह दिल्ली से भाग निकला। अपने प्राण बचाने के लिये उसने अनेक राजाओं से प्रार्थना की, किंतु किसी ने उसे शरण देना स्वीकार नहीं किया। बादशाह को अप्रसन्न करने का साहस किसी को नहीं हुआ।

विपत्तिका मारा मुहम्मदशाह इधर-उधर भटक रहा था। अंत में वह रणथम्भौर के चौहान राजा हमीर के राज-दरबार में गया। उसने राजा से अपने प्राण बचाने की प्रार्थना की। राजा ने कहा- ***'क्षत्रिय का पहला धर्म है शरणागत की रक्षा। आप मेरे यहाँ निश्चिन्त होकर रहें। जबतक मेरे शरीर में प्राण हैं, कोई आपका बाल भी बाँका नहीं कर सकता।'***

मुहम्मदशाह रणथम्भौर में रहने लगा। जब बादशाह अलाउद्दीन को इस बात का पता लगा तो उसने राजा हमीर के पास संदेश भेजा- 'मुहम्मदशाह मेरा भगोड़ा है। उसे फाँसी का दण्ड हुआ है। तुम उसे तुरंत मेरे पास भेज दो।'

राजा हमीरने उत्तर भेजा- 'मुहम्मदशाह मेरी शरण आया और मैंने उसे रक्षाका वचन दिया है। मुझे चाहे सारे संसार से युद्ध करना पड़े, भय या लोभ में आकर मैं शरणागत का त्याग नहीं करूँगा।'

राजा का पत्र पढ़कर अलाउद्दीन को बहुत क्रोध आया। उसने इसे अपमान समझा। उसने उसी समय सेना को रणथम्भौर पर चढ़ाई करने को कहा। टिड्डियों के दलों के समान पठानों की बड़ी भारी सेना चल पड़ी। रणथम्भौर के किले को उस सेना ने दस मील तक चारों ओर से घेर लिया। अलाउद्दीन ने राजा के पास फिर संदेश भेजा कि वह मुहम्मदशाह को भेज दे। बादशाह समझता था कि राजा हमीर बादशाह की भारी सेना देखकर डर जायगा, किंतु राजा हमीर ने स्पष्ट कह दिया- ***'मैं किसी भी प्रकार शरणागत को नहीं दूँगा।'***

युद्ध प्रारम्भ हो गया। बादशाह की सेना बहुत बड़ी थी; किंतु राजा हमीर के वीर तो मौत से भी दो-दो हाथ करने को तैयार थे। भयंकर युद्ध महीनों चलता रहा। दोनों ओर के हज़ारों वीर मारे गये। अंत में एक दिन मुहम्मदशाह ने स्वयं राजा हमीर से कहा- 'महाराज! मेरे कारण आप बहुत दु:ख उठा चुके। मुझसे अब आपके वीरों का नाश नहीं देखा जाता। मैं बादशाह के पास चला जाना चाहता हूँ।'

राजा हमीर बोले- 'मुहम्मदशाह! तुम फिर ऐसी बात मत कहना। जबतक मेरे शरीर में प्राण हैं, तुम यहाँ से बादशाह के पास नहीं जा सकते। क्षत्रिय वीर का कर्तव्य है ***शरणागत-रक्षा।*** मैं अपने कर्तव्य का पालन प्राण देकर भी करूँगा।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, बहादुर सेना के वीर घटते गये। रणथम्भौर के किले में भोजन-सामग्री कम होने लगी। उधर अलाउद्दीन की सेना में दिल्ली से आकर नयी-नयी टुकड़ियाँ बढ़ती ही जाती थीं। अंत में रणथम्भौर के किले की सब भोजन-सामग्री समाप्त हो गयी। राजा हमीर ने 'जौहर-व्रत' करने का निश्चय किया। क्षत्रिय स्त्रियाँ जलती चिता में कूद गयीं और केसरिया वस्त्र पहनकर सब क्षत्रिय वीर सैनिक किलेका फाटक खोलकर निकल पड़े। शत्रुओं से लड़ते-लड़ते वे मारे गये। मुहम्मदशाह भी राजा हमीर के साथ ही युद्ध-भूमि में आया और युद्ध में मारा गया। विजयी बादशाह अलाउद्दीन जब रणथम्भौर के किले में पहुँचा तो उसे केवल जलती चिता की राख और अंगारे मिले। ***शरणागत की रक्षा के लिये अपने सर्वस्वका बलिदान करने वाले वीर महापुरुष संसार की इस पवित्र भारत-भूमि पर ही हुए हैं।***

ROLE OF SOUL IN DREAMS

-Dr. O.P. Kohli



The body is the real house that we inhabit. We carry it around with us all the time. We can say that this body is the switch board and the five senses are its telephone instruments. Through these senses we are in touch with the world.

The soul is said to be unmanifested and unchangeable while it is apparently manifested in the body of every individual. This can be explained by analyzing a dream state. If "A" dreams that he has become a powerful man catching wild elephants and holding them captive in the palm of his hands, his dream consciousness undergoes a temporary change. He, however, on waking up finds that his ego or "A" consciousness has remained unchanged by the absurd dream experiences. The essence of his consciousness was unmanisfested in the dreams and the dreams thoughts were not aware of the true "A" consciousness.

The soul similarly dreams the body and ascribes to the dream ego, inherent in it. When man enters deep dreamless sleep, the soul temporary for gets all its dreams about the body and the world and remains locked up in its true nature of bliss. The dream comes and goes ; the soul is changeless.

The body emanating from the soul is not conscious of the soul, but the soul is aware of the body. Just as a person can watch through a screen a crowd of people in front of him without himself being seen by them, the soul through the screen of intuitions watches all its thoughts but the thoughts are not aware of the soul. This is the reason why Gita speaks of the soul as imponderable beyond thought. Thoughts and sensations relate to the world of material creation or the ego consciousness in the dreams.

It is only when we wake from dreams that we have been dreaming. Similarly, this life may be realized as a dream when we wake in Cosmic Consciousness. In sleep we have a heightened power of visualization and manifestation and our thoughts swiftly erect the various structures of a dream as the life energy is released from various bodily demands and experiences. The enlivening action of the energy on the stored up thought films in the sub-conscious result in the projection of the mental motion pictures which we call as dreams.

Thoughts are invisible but in the dreamland they may be made visible by the force of energy. So, originally this whole universe is in the form of God's thoughts. The God's cosmic intelligent vibrations or energy crystallized those thoughts and thus they become visible to us as the material universe.

When a man is identified with his body, he feels nothing more than the sensation of sight, smell, taste, touch, sound, weight and movement. If, by meditation, he withdraws his consciousness within, he finds a silent light, finer than x-rays, coming from the soul and projecting the picture of the body on the screen of human consciousness. This screen consists of 16 gross elements, which enable it to act in and react to its environments.

God has sent man to earth to be entertained by the bodily dreams and not to obscure his consciousness of immortality by being identified with the body. The man should meditate deeply until his thoughts become dissolved into intuition. When the yogi perceives the soul as made in the image of Spirit, He knows himself to be unchangeable, unmanisfested and ever calm like the Spirit.

The average persons, suffering from ignorance and material attachments live a narrow life. He is born, he marries, get old and he dies. He goes thought the cycle of deaths and births for many incarnations with the same experiences until, by deep meditation, his gains eternal freedom. Once the mortal soul loses its body identification, it is free. The man leaves the physical body. As per his Karmas, a man lives and develops in the astral body for some time and then again is reborn in the physical world, as per the cosmic law. Thus, astral death is ph[illegible]! birth.

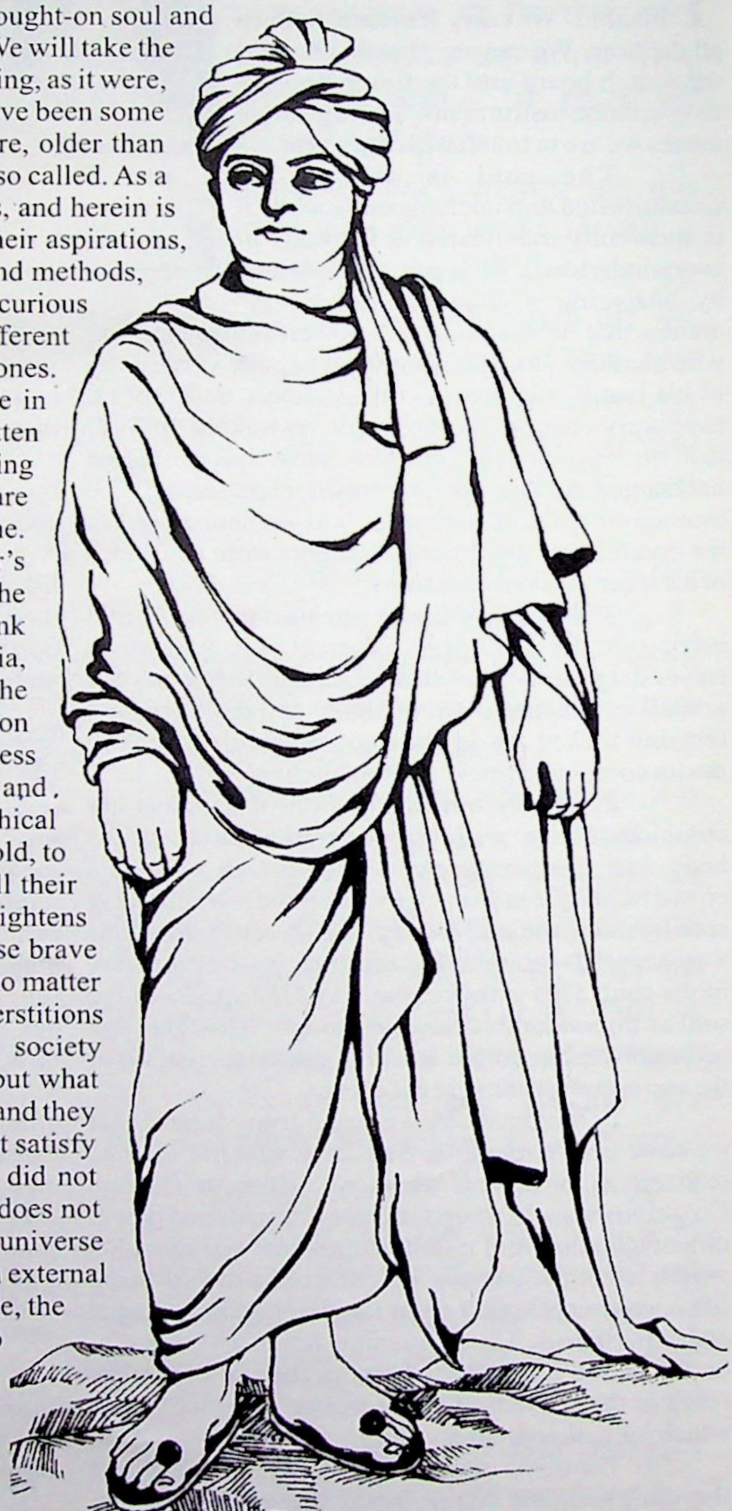
These cycles of enc[illegible]nts are the d[illegible] of all non-enlightened me[illegible]. A man with an ex[illegible] fear of cycle of births and deaths may dre[illegible]m every night that he is being born as a baby and then dying after he becomes an adult. These dreams may continue indefinitely until he identifies with the omniscient spirit. A man awake in omnipresent Spirit loses all delusive nightmares.

Dear Father, whatever conditions confront me, I know that they represent the next step in my unfoldment. I will welcome all tests because. I know that within me is the intelligence to understand and the power to overcome.

- Sri Sri Paramahansa Yogananda, "Metaphysical Meditation".

THE ROAD TO WISDOM

Swami Vivekananda on ***Vedic Religious Thoughts***



What concerns us most is the religious thought-on soul and God and all that appertains to religion. We will take the Samhitas. These are collections of hymns forming, as it were, the oldest literature in the world. There may have been some scraps of literature of older date here and there, older than that even, but not books, or literature properly so called. As a collected book, this is the oldest the world has, and herein is portrayed the earliest feeling of the Aryans, their aspirations, the questions that arose about their manners and methods, and so on. At the very outset we find a very curious idea. These hymns are sung in praise of different gods, Devas as they are called, the bright ones. There is quite a number of them. ...Of course in reading books and criticisms on the Vedas written by Europeans, the Hindu cannot help smiling when he reads, that the writings of our authors are saturated with this previous education alone. Persons who have sucked in as their mother's milk the idea that the highest ideal of God is the idea of a Personal God, naturally dare not think on the lines of these ancient thinkers of India, when they find that just after the Samhitas, the monotheistic idea with which the Samhita portion is replete was thought by the Aryans to be useless and not worthy of philosophers and thinkers, and that they struggled hard for a more philosophical and transcendental idea. ... The Hindus were bold, to their great credit be it said, bold thinkers in all their ideas, so bold that one spark of their thought frightens the so-called bold thinkers of the West. ...These brave people followed reason wherever it led them, no matter at what cost, never caring if all their best superstitions were smashed to pieces, never caring what society would think about them, or talk about them; but what they thought was right and true, they preached and they talked. ... this ancient monotheistic idea did not satisfy the Hindu mind. It did not go far enough, it did not explain the visible world: a ruler of the world does not explain the world-certainly not. A ruler of the universe does not explain the universe, and much less an external ruler, one outside of it. He may be a moral guide, the greatest power in the universe, but that is no explanation of the universe; and the first question that we find now arising, assuming proportions, is the question about the universe: 'Whence did it come?' 'How did it come?' 'How does it exist?'

From the Complete Works of Swami Vivekananda

सदस्यता-प्रपत्र

श्री गंगासंग्रह

जम्मू-कश्मीर की नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक द्विमासिक पत्रिका

प्रमुख कार्यालय :-

जम्मू यात्री-भवन, गली दारुगिरां, डाक बंगला के सामने वाली गली, जम्मू तवी-180001

फ़ोन नं॰ : 0191-2574881, 2565858

हरिद्वार : भूपतवाला, ऋषिकेश रोड, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

फ़ोन नं॰ : 01334-261790, 261527, 262161

E-mail : jammu_yatri_bhawn@rediffmail.com Website : www.jammuyaribhawan.in

महोदय,

मैं श्री गंगासंग्रह द्विमासिक पत्रिका-सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। अतः आपकी सेवा में दस वर्ष/पाँच वर्ष/ तीन वर्ष/ एक वर्ष का सदस्यता शुल्क क्रमशः, 1200/-/600/-/360/-/120/- रुपए ड्राफ़्ट/मनिऑर्ड/चैक नं॰........ .... राशि.............. दिनांक.................. को भेज रहा/रही हूँ। निम्न पते पर पत्रिका भिजवाने की व्यवस्था कर कृतार्थ करें।

नाम..

पिता का नाम..

पता..

....

....

....

.... पिन कोड नं. ....

मो॰ नं॰... फ़ोन...

भवदीय,

(   )

(नोटः 1. कृपया नाम व पता आदि, हिन्दी तथा अंग्रेजी में स्पष्ट रूप से लिखें।

जम्मू यात्री-भवन, हरिद्वार

नये भवन के लिए तत्काल आवश्यक वस्तुओं के विषय में निवेदन

धर्म-प्रेमी दानी सज्जनो एवं माताओ-बहनो! जय गंगा मैय्या

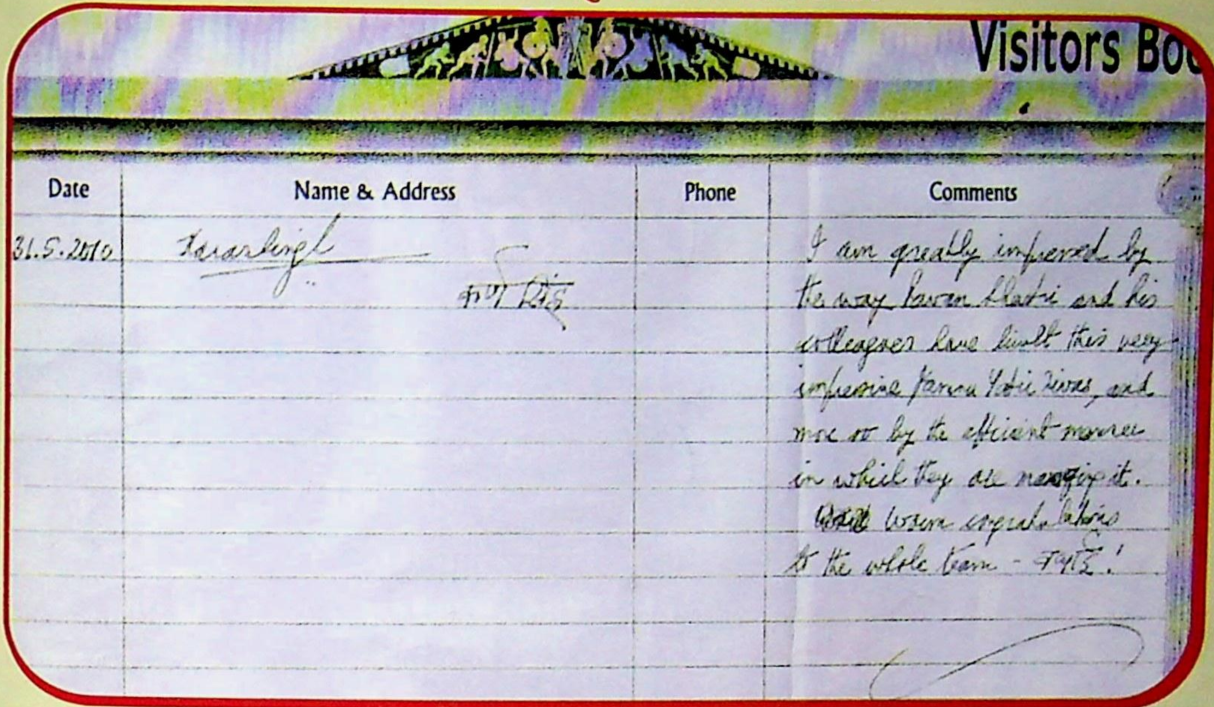
जम्मू यात्री भवन की सारी योजनाओं का कार्य, समाज के आप जैसे उदार संवेदनशील तथा सेवाभावी दानी महानुभावों की सहायता/सहयोग-राशि से श्री गंगा मैय्या के चरणों में समर्पित भाव से ही किया जा रहा है। पिछले कुछ वर्षों से यात्रियों के ठहरने के लिये 150 कमरों का, भगवत् प्रसाद के रूप में भोजन करने के लिये हॉल का एवं सत्संग सभागार का जो निर्माण कार्य चल रहा था, वह अब पूरा हो चुका है। नये बने कमरों, सभागारों तथा रसोईघर आदि के लिए नीचे लिखी वस्तुओं की तत्काल आवश्यकता है। अपने पूर्वजों की सद्गति, आत्मिक शान्ति, अपने कार्य-व्यापार एवं परिवार की सुख-समृद्धि के लिए गंगा मैय्या जी का आशीर्वाद लेते हुए यथाशक्ति सहयोग-राशि देकर पुण्य के भागी बनें तथा अपना नाम भवन के सहयोगियों की सूची में बोर्ड पर अंकित करवाएँ।

क्रमांक	वस्तु	संख्या	राशि
1.	टेलीविज़न	140	7500/- प्रति
2.	एयर कंडीश्नर (स्टेबलाइज़र के साथ)	145	25000/- प्रति
3.	बैड-शीट	200	300/- प्रति
4.	ओढ़ने वाली चादर	800	151/- प्रति
5.	कम्बल	500	501/- प्रति
6.	सिरहाना (कवर के साथ)	250	201/- प्रति
7.	स्टील जग	90	
8.	स्टील गिलास कमरों के लिए	180	
9.	स्टील ट्रे	90	
10.	स्टील प्लेट	90	251/- प्रति सैट
11.	स्टील चम्मच	1000	5/- प्रति
12.	(स्टैण्ड वाला) पंखा	25	3125/- प्रति
13.	थालियाँ 6 खानों वाली-गिलास सहित	500	151/- प्रति
14.	डीप फ्रिज़	1	51000/- प्रति
15.	टेलीविज़न (एल.सी.डी.)	11	21000/- प्रति
16.	गाड़ी 8 सीटर (वाहन)	1	अनुमानित
17.	चपाती बनाने वाली मशीन	1	350000/- प्रति
18.	वाइपर्स	250	40/- प्रति

मुख्य कार्यालयः
गली दारुगिरां (कनक मण्डी),
(डाक बंगला के सामने वाली गली), जम्मू
दूरभाष : 0191-2574881, मोबाईल : 9906004138
E-mail : jammu_yatri_bhawan@rediffmail.com

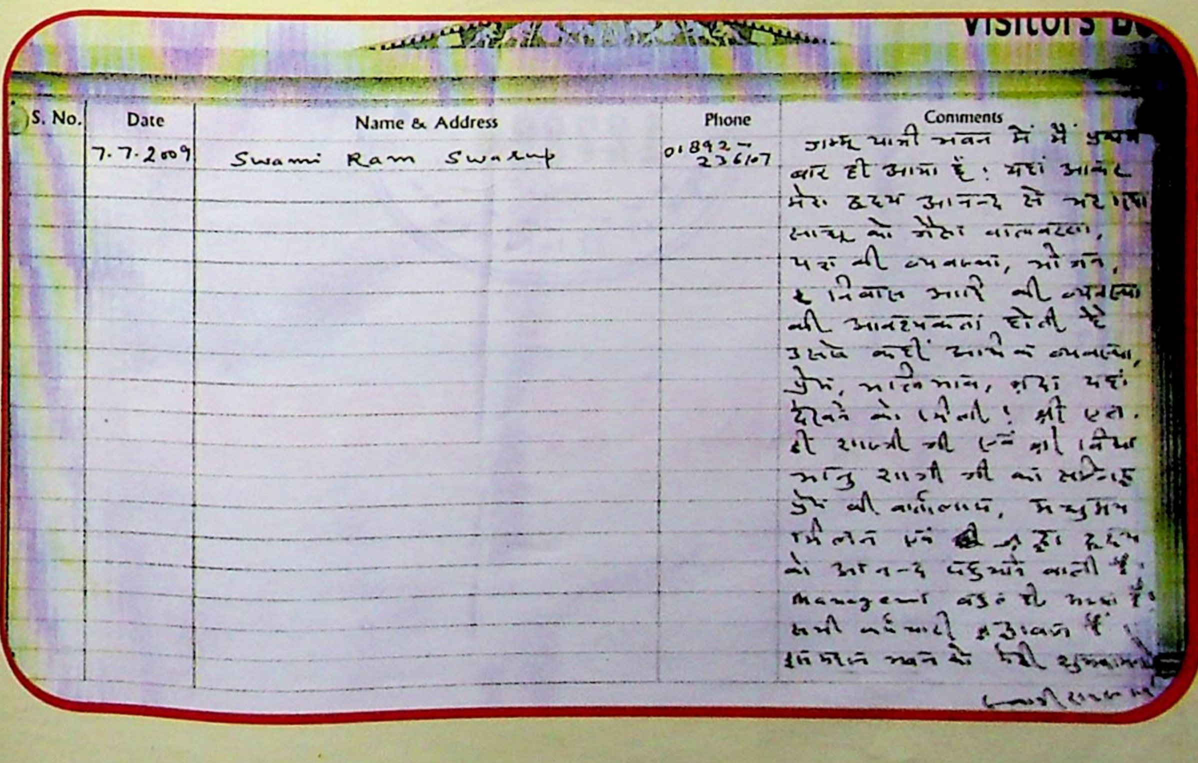
हरिद्वार :
ऋषिकेश रोड, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)
दूरभाष : 01334-261790, 261527
मो. : 9897128391 (मैने.), 9897059572 (पी.आर.ओ.)
Website : 222.jammuyatribhawan.in

हरिद्वार स्थित जम्मू यात्री भवन में विश्राम करने के बाद वहां की यात्री पुस्तिका (Visitors Book) में व्यवस्था आदि के बारे में डॉ. कर्ण सिंह जी के निजी विचार



Date	Name & Address	Phone	Comments
31.5.2010	Karan Singh कर्ण सिंह		I am greatly impressed by the way Pawan Shastri and his colleagues have built this very impressive Jammu Yatri Niwas, and more so by the efficient manner in which they are managing it. Warm congratulations to the whole team - [illegible]!

हरिद्वार स्थित जम्मू यात्री भवन में 2009 की गुरु पूर्णिमा के शुभ अवसर पर स्वामी रामस्वरूप योगाचार्य जी के निर्देशन में शिष्य-शिष्याओं द्वारा तीन दिन चले यजुर्वेद यज्ञ पारायण समाप्ति पर यात्री-पुस्तिका में स्वामी जी द्वारा लिखित विचार



S. No.	Date	Name & Address	Phone	Comments
	7.7.2009	Swami Ram Swarup	01892-236107	जम्मू यात्री भवन में मैं प्रथम बार ही आया हूँ। यहां आकर मेरा हृदय आनन्द से भर गया। साधु को जैसा वातावरण, यज्ञ की व्यवस्था, भोजन, व निवास आदि की व्यवस्था की आवश्यकता होती है उससे कहीं अधिक व्यवस्था, प्रेम, आतिथ्य भाव, यहां देखने को मिली। श्री पवन ही शास्त्री जी एवं श्री विनय [illegible] शास्त्री जी का [illegible] व्यवहार, मधुर मिलन एवं [illegible] हृदय को आनन्द पहुँचाते हैं। Management बहुत ही अच्छा है। सभी कर्मचारी [illegible] हैं। [illegible] भवन के लिये शुभकामनाएं। स्वामी रामस्वरूप


ये शक्ति है
सत्य की ....
SHAKTI
TMT SARIA
A Mark of Quality
शक्ति एक ऐसा सरिया है जो दे बेमिसाल मजबूती के साथ सुरक्षा की गारंटी और विश्वास की मुहर । उच्चतम तकनीक से तैयार शक्ति सरिया देता है भरोसा, आपके घर को उम्र भर के लिए, तो जानिए इस सत्य को और ले आइए आज ही ।
KASHMIR ISPAT
An ISO 19001:2000 & 14001:2004 Company
Lane No. 2, Phase -2, SIDCO Industrial Area,
Bari Brahmana, Jammu.
Phones : (95-1923) 220178, 220887
e-mail : narbadasteel@yahoo.co.in

RNI No. JKBIL/2009/28365
Posting Registration No.: JK-371/10

